विश्व-विवेक की ओर

अध्यापकों की शिक्षा और ट्रेनिंग

अनुवादक

कुल भूषण

संयुक्त राष्ट्र की शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति संस्था के सह-प्रबन्ध से भारत के राष्ट्रीय कमीशन के तत्वावधान में भारत में प्रकाशित

ओरियन्ट लौंगमन्स

बम्बई कलकत्ता नई दिल्ली मद्रास

सूची

भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय कांफ्रेन्स के एक विशेष रूप के साथ यूनेस्को ने कुछ प्रयोग किए हैं और इस सभा को उसने 'शिविर' का नाम दिया है। इन 'शिविरों' में कई देशों की सरकारों द्वारा निर्वाचित शिक्षक एकत्रित होकर पूर्व-निर्धारित शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों का गहरा अध्ययन करते हैं, अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर 'अध्ययन-दल' विधि का उपयोग करते हैं, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए चीजें तैयार करते हैं, भागीदार देशों के लिए योजानाएँ बनाते हैं, और कुछ अवधि के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय समाज में रहते हैं।

प्रत्येक 'शिविर' का सबसे आवश्यक भाग है एक छोटा-सा अनियमित अध्ययन-दल जिसमें सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है, विचारों और विधियों पर बहस होती है और प्रश्नों के हल सुझाए जाते हैं। 'शिविर' की समाप्ति से पहले प्रत्येक समूह से एक रिपोर्ट बनाने के लिए कहा जाता है जिसमें समूह की विचार-धारा व्यक्त की जाती है और उसके सुझाव उपस्थित किए जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन तीन समूहों की तीन रिपोर्ट हैं जो अध्यापकों की शिक्षा और ट्रेनिंग पर हुए 'शिविर' में तैयार की गई थीं। यह शिविर १५ जुलाई से २५ अगस्त १९४८ तक बर्खम-स्टेड, हर्टफोर्डशायर के पास ऐशरिज में आयोजित हुआ था।

भागीदार

२२ भिन्न देशों के ४७ व्यक्तियों* ने इस 'शिविर' में भाग लिया। इनमें से २४—आधे से कुछ अधिक—ऐसी संस्थाओं से सम्बन्धित थे जहाँ शिक्षक तैयार किए जाते हैं, १२ ऐसी संस्थाओं के प्रमुख थे, और १२ अधिकारी थे। आठ भागीदार शिक्षा मंत्रालयों या शिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य सरकारी

---

* आस्ट्रेलिया (१ भागीदार), आस्ट्रिया १, बेलजियम १, बर्मा १, कैनाडा ३, चेकोस्लोवाकिया १, मिस्र १, फ्रांस ५, हंगरी १, भारत २, इटली २, लक्समबर्ग १, निदरलैंड्स २, न्यूजीलैंड १, नार्वे २, पोलैंड २, स्विटजरलैंड २, सीरिया १, तुर्की २, दक्षिणी अफ्रीका संघ २, संयुक्त राज्य (इङ्गलैंड से २, स्काटलैंड, वेल्स, उत्तरी आयरलैंड, नाइगेरिया व गोल्डकोस्ट प्रत्येक से १-१, कुल जमा ७), और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ६।

विभागों के प्रतिनिधि थे। दो शिक्षा-अनुसन्धान करनेवाले कार्यकर्ता थे, अनुसंधान व शिक्षा के काम की देखरेख करनेवाला एक कालेज-अधिकारी था, एक मानस-शास्त्र विभाग का डायरेक्टर था, और एक उच्च अधिकारी था जो पढ़ानेवाले अध्यापकों की शिक्षा से सम्बन्धित एक संस्था का प्रबन्ध करता था। एक हाई-स्कूल का प्रिंसिपल और पाँच हाई-स्कूलों के अध्यापक भी उपस्थित थे। अन्त में चार बी० ए० पास विद्यार्थी थे, जिन्हें प्राथमिक स्कूल में पढ़ाने का अनुभव था (१), माध्यमिक स्कूल में पढ़ाने का अनुभव था (२), और शिक्षक की ट्रेनिंग का अनुभव था (१)। भागीदार कई प्रकार के विषयों में विशेपज्ञ थे। ये विषय थे—शिक्षा, मानस-शास्त्र, दैवत्व, और दर्शन-शास्त्र; इतिहास, भूगोल और नागरिक-शासन-शास्त्र; साहित्य, उच्च कोटि के साहित्य की (प्राचीन) भाषाएँ और वर्तमान भाषाएँ; गणित और रसायन; संगीत और गृह-मितव्यय। आयु २७ से ६० तक थी, मगर अधिकतर लोग ३५ और ५० के बीच में थे। भागीदारों में ३५ पुरुष थे और १२ स्त्रियाँ। शिविर के डायरेक्टर कोलम्बिया विश्वविद्यालय (संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका) के टीचर्स कालेज के शिक्षा के प्राध्यापक डा० कार्ल डब्ल्यू० बिजेलो थे। उन्हीं द्वारा यूनेस्को के डायरेक्टर, जनरल के लिए शिविर पर तैयार की गई रिपोर्ट में से इस प्रस्तावना में दी गई सूचना ली गई है*।

अध्ययन-दल

तीन अध्ययन-संघों के लिए यूनेस्को ने तीन विषय सुझाए थे : 'बालक की वृद्धि व विकास की समझ के लिए अध्यापकों को शिक्षा देना', 'सामाजिक समझ के लिए अध्यापकों को शिक्षा देना', और 'अन्तर्राष्ट्रीय समझ में भावी योगदान देने की भूमिका में काम करने के लिए अध्यापकों को तैयार करना'।

संभवतः सदस्यों को उनकी इच्छानुसार इन तीन दलों में बाँटा गया। मगर इस बात पर समझौता था कि पहले दो या तीन दिन के लिए सब दलों की बाँट सामयिक है। इसके बाद यह आशा की जाती थी कि शिविर के अवधि काल में सदस्य अपने ही दलों में रहेंगे। सच बात यह है कि बाद में बदली के लिए केवल एक प्रार्थना प्राप्त हुई—जब शिविर के आरम्भ को दो से अधिक सप्ताह हो चुके थे।

शनिवार व रविवार को छोड़कर प्रत्येक दिन सुबह तीनों दल मिलते। पहली दो बैठकों में प्रत्येक दल ने अपने अपने विषयों के अर्थों पर विचार किया और

---

* बिजेलो, कार्ल डब्ल्यू०, अध्यापकों की शिक्षा व ट्रेनिङ्ग पर यूनेस्को का शिविर, १९४८ (सेम० आई० /आई० एन० एफ० / १२)।

कार्य के प्रयोगात्मक ढाँचे तैयार किए। निर्णय हुआ कि आरम्भ में प्रत्येक सदस्य अध्ययन-दल के निर्वाचित विषय पर अपने-अपने देश की दशा का वर्णन करे।

बालक की वृद्धि और विकास के दल को दूसरे दलों से अधिक सुविधाएँ थीं। इसका विषय सबसे गठा हुआ और स्पष्ट था, इसके सदस्य सबसे कम थे और इसका कार्यक्रम एक ही भाषा में किया जा सका था। भिन्न देशों की रिपोर्टों के बाद दल ने तीन भिन्न आयुओं के बालकों की वृद्धि व विकास पर संक्षिप्त सार सुने और तदुपरान्त दल के दिलचस्पी रखनेवाले सदस्यों द्वारा सुझाए गए कई विशेष प्रश्नों पर बहसें भी हुईं।

अन्तर्राष्ट्रीय समझ के दल का विषय सबसे बड़ा और सबसे अस्पष्ट था और इसके अलावा इस दल में अंग्रेजी से फ्रेंच और फ्रेंच से अंग्रेजी में अनुवाद करने की आवश्यकता सदा रहती थी।

दलों के विषय एक दूसरे से बिलकुल अलग नहीं थे—और प्रत्येक दल ने ऐसे प्रश्नों पर अपने दृष्टिकोण से विचार किया जिन पर अन्य दल भी विचार कर रहे थे। यह लाभदायक सिद्ध हुआ क्योंकि इससे दलों के बीच और भिन्न दलों के सदस्यों के बीच एक महत्वपूर्ण सम्पर्क स्थापित हुआ। मगर इसका अर्थ यह भी हुआ है कि तीनों रिपोर्टों ने कहीं-कहीं एक ही जैसे प्रश्नों पर विचार किया है। इस बात में सावधानी बरती गई है कि अनावश्यक दुहराव से बचा जाए ताकि जिन्होंने शिविर में भाग नहीं लिया, वे इन रिपोर्टों को दिलचस्पी से पढ़ सकें। इसके लिए दल १ व ३ की रिपोर्टों का सम्पादन किया गया है और दल-दल की रिपोर्ट को संक्षिप्त रूप में उपस्थित किया गया है।

व्याख्यान

शिविर के प्रोग्राम में १३ व्याख्यानों की एक कड़ी भी थी जो दोपहर या शाम को होते थे। इनमें से चार, जिनमें यूनेस्को के डायरेक्टर-जनरल और शिक्षा के सहायक डायरेक्टर-जनरल के व्याख्यान भी सम्मिलित हैं, यूनेस्को और उसके कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित थे। दो ब्रिटेन की शिक्षा की सामान्य भूमिका के सम्बन्ध में थे और सात शिविर की विशेष दिलचस्पीवाले विषयों पर थे।

ये व्याख्यान इस पुस्तिका में नहीं छापे गए, सिवाय कुमारी गार्डनर के भाषण के जिसका विषय था 'बालक की वृद्धि और विकास—अध्यापकों के अध्ययन के विषय के रूप में'। यह भाषण दल १ की रिपोर्ट के बाद दिया जा रहा है, क्योंकि इस दल के सदस्यों को यह विशेष रूप से उपयोगी लगा और क्योंकि उनकी रिपोर्ट से इसका सम्बन्ध बहुत गहरा है।

आशा है कि शिक्षा-विशेषज्ञ, अध्यापक और प्रबन्धकर्ता, इन रिपोर्टों को उपयोगी और उत्तेजनापूर्ण पाएँगे। मगर किसी शिविर की सफलता केवल इस प्रकार की रिपोर्टों से नहीं आँकी जानी चाहिए। लंदन टाइम्स के 'शिक्षा-परिशिष्ट' के सम्पादक द्वारा लिखा गया नीचे उद्धृत शिविर का वृतांत संक्षेप में उन महत्वपूर्ण परिणामों को दर्शाता है, जो पूरे हुए, मगर जिनका उल्लेख मात्र ही रिपोर्टों में आया है।

> इस सप्ताह यूनेस्को द्वारा आयोजित, एशरिज कालेज, हर्टफोर्डशायर में हुए अध्यापकों की शिक्षा और ट्रेनिंग पर छः सप्ताहों का शिविर समाप्त हुआ। यह समाप्ति प्रसन्नता का विषय है और उत्तम अर्थों में सफलता का भी।
>
> इस सुन्दर और नियंत्रित वातावरण में लगभग सत्तर व्यक्ति (यह संख्या बदलती रही, क्योंकि कुछ लोग देर से आए और कुछ बाहर से आनेवाले भाषणकर्ताओं और अतिथियों ने भी एक या दो दिन के लिए बहसों में भाग लिया) तीन मुख्य लक्ष्य सामने रख कर बैठे: एक दूसरे को पहचानना और उनका दृष्टिकोण समझना, अध्यापक की शिक्षा और ट्रेनिंग के विषय में सारी जानकारी को एकत्रित करना और अन्य लोगों की जानकारी से अपनी जानकारी की तुलना करना, और जितने अधिक हो सकें उतने रचनात्मक और उपयोगी सुझाव देना। पहले लक्ष्य का अनुकरण लम्बे दिनों में हमेशा किया जा सकता था (और किया गया), अन्य लक्ष्य मुख्यतया अध्ययन-दलों से सम्बन्ध रखते थे।
>
> ...शिविर की आधी अवधि का अधिक भाग वास्तु व्याख्या में लगाना पड़ा। यह सब समय व्यर्थ नहीं गया। इससे सदस्यों को आकर्षक ढंग में बहुत सी सूचना मिली जो संक्षिप्त दस्तावेजों से नहीं मिलती और इससे उन्हें एक दूसरे के व्यक्तित्वों का अध्ययन करने और एक दूसरे के विचार व्यक्त करने के राष्ट्रीय ढंगों को समझने का अवसर भी मिला। यहाँ तक कि राष्ट्रीय जाति-स्वभाव के विषय में सहनशीलता का पाठ भी उन्होंने पढ़ा। सबसे मूल्यवान पाठ जो उन्होंने पढ़ा वह शायद यह था कि एक ही भाषा का उपयोग करते हुए भी भिन्न राष्ट्रों के लोगों की बातों का अर्थ अलग-अलग होता है।
>
> वास्तु स्थिति स्पष्ट होने के बाद, एक ऐसे स्वतन्त्र, स्पष्ट और सभ्य वातावरण में बहस चली जिसके लिए डायरेक्टर ने माँग की थी। गहरे अध्ययन की लम्बी अवधि की समाप्ति पर, जो अवश्य कठोर परिश्रम से परिपूर्ण होगी, इन दलों के सदस्यों के बीच बैठ कर दर्शक को एक आनन्ददायक और अति उत्साहपूर्ण अनुभव का भास होता था। मित्रता की गर्मी और साहचर्य की भावना से भरे वाता-

वरण में स्पष्टवादिता को कोई रोक न थी और बचाव को कोई प्रोत्साहन न था—चाहे वह केवल शिष्टता के हेतु ही क्यों न हो। यदि युद्धों का आरम्भ मनुष्य के हृदयों से होता है, तो सचमुच यहाँ एक उदाहरण था जिससे सिद्ध होता था कि शान्ति का आरम्भ भी इसी भाँति होता है।

और यही, मेरा विश्वास है, इस शिविर का सर्वोत्तम कार्य समझा जाना चाहिए। जैसा एक भागीदार ने कहा, 'सदस्यों का एक दूसरे पर परस्पर शिक्षणीय प्रभाव'। एक अन्य सदस्य ने कहा, 'अव्यक्त लाभ'। मगर व्यक्त और दिखाई देनेवाले लाभ भी थे। वे सदस्य जो वहाँ पहुचने के समय शर्मानेवाले, अविश्वस्त व दबे हुए थे बहुत अच्छे मित्र और बहस में उत्तम कोटि का योग देनेवाले सिद्ध व्यक्ति बन गए। छः सप्ताहों में कइयों ने इतना सीख लिया जितना अपने देश में वे छः वर्षों में भी न सीखते।

. . .निस्सन्देह कई बीज बोए गए जो ज्ञान, समझ और सहृदयता की लहलहाती फसल पैदा करेंगे। यह निश्चित है कि उन्होंने विश्वास को दृढ़ किया, आशा को बढ़ावा दिया और आदर्शों को पुनर्जीवित किया—और यह सब हुआ व्यावहारिक प्रश्नों, कठिनाइयों और खतरों से बचने की चेष्टा किए बिना।

बालक की वृद्धि और विकास की समझ के लिए अध्यापकों को शिक्षा देना

दल १

श्री क्रिश्चियन बाचवे (गोल्ड कोस्ट, पश्चिमी अफ्रीका)
श्रीमती एच० ब्रुल (फ्रांस)
श्रीमती एच० एफ० केम्बल (उत्तरी आयरलैंड)
श्री अमीन हेकिमगिल (तुर्की)
कुमारी जी० हैनकैम्प (संयुक्त राष्ट्र, अमेरिका)
कुमारी नोरा हेनशिलवुड (दक्षिणी अफ्रीका संघ)
कुमारी सीगर जोन्स (इंगलैंड)
श्री सोहनलाल (भारतवर्ष)
श्री ए० क्लिफ़ लुईस (केनाडा)
श्री यू० वा ल्विन (बर्मा)
श्री जान ओ' मीरा (दक्षिण अफ्रीका संघ)
श्री फ्रांटीसेक सोस्ना (चेकोस्लोवाकिया)
श्री कार्ल जापे (आस्ट्रिया)
प्रोफेसर सी० आर० मेक्री (आस्ट्रेलिया)
(दल के सभापति)

१. बालक की वृद्धि और विकास के विषय में शिक्षा देना

दल १ के सदस्यों को यह उचित प्रतीत हुआ कि पहले इस बात पर विचार-विमर्श किया जाए कि अध्यापकों की ट्रेनिंग संस्थाओं में विद्यार्थियों को बालक की वृद्धि और विकास समझाने की शिक्षा के विषय में सचमुच क्या किया जा रहा है। इसलिए दल के सदस्यों ने अपने-अपने देशों की दशा के विषय में संक्षिप्त रिपोर्टें तैयार कीं और उन्हें टीकाओं और प्रश्नों के लिए दल के सम्मुख रखा।

एक दर्जन विभिन्न देशों की रिपोर्टों ने बताया कि अध्ययन-क्रमों, विधियों और दबाव के विचार से देशों में पर्याप्त भिन्नता है। इससे भी अधिक अद्भुत

थी इन देशों में परस्पर समानता, विशेषकर इस बात पर सब सहमत थे कि अमूर्त, किताबी बाल-मानस-शास्त्र से जो बालकों की शिक्षा में पर्याप्त रूप से सहायक नहीं होता, बहुत परे हटने की आवश्यकता है।

रिपोर्टों से यह बात स्पष्ट थी कि बालक की वृद्धि और विकास के विषय पर शिक्षा देने का महत्व अधिकतर स्वीकार किया जाता है और प्रत्येक देश में जहाँ की रिपोर्टें उपस्थित की गई, ट्रेनिंग प्राप्त करते हुए अध्यापक इस विषय पर कुछ शिक्षा ज़रूर पाते हैं।

उन्नत विधियों की आवश्यकता

रिपोर्ट उपस्थित करने के बाद जो बहसें हुई उनमें बालकों की वृद्धि और विकास के विषय में शिक्षा देने की विधियों की कड़ी आलोचना थी। इस बात पर सहमति हुई कि अधिकतर संस्थाओं में इस विषय की शिक्षा बहुत शास्त्रीय ढंग पर दी जाती है और जो ज्ञान ग्रहण किया जाता है वह कार्य-सम्बन्धी न होकर गतिहीन होता है। केवल पाठ्य पुस्तक द्वारा बालक के विकास के तथ्यों का ज्ञान पर्याप्त नहीं है।

यह काफ़ी मूल्यवान है कि एक होनेवाला अध्यापक परीक्षा में चार वर्ष के बालक की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विशेषताओं से सम्बन्धित कुछ तथ्य बता सके, मगर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि वह नर्सरी-स्कूल में असली बालकों के विशेष आचरण की समस्याओं को सुलझा सके। ऐसा प्रतीत होता है कि आजकल अधिकतर देशों में अध्यापक कक्षा की व्यावहारिक समस्याओं को सुलझाने की क्षमता रखने की अपेक्षा परीक्षा के प्रश्न हल करने में अधिक तत्पर हैं। आरम्भिक बहस में एक बात पर विशेष जोर दिया गया जो अध्यापकों की शिक्षा व ट्रेनिंग पर लिखे गए नए प्रकाशनों में स्पष्ट रूप से अंकित की गई है (जैसे, 'हमारे जमाने के अध्यापक' नामक पुस्तक में) :

> अध्यापक द्वारा मानव-स्वभाव के अध्ययन का ध्येय केवल उसकी उत्सुकता की पूर्ति नहीं है। जो कुछ सीखा गया है, उसका उपयोग अन्य लोगों को शिक्षा देने और उनमें अन्य विकास की प्रवृत्तियों को उभारने के लिए करना है। बालक की वृद्धि और विकास के ज्ञान की कसौटी होगी वह कुशलता जिससे उसका प्रयोग व्यावहारिक रूप में किया जाएगा।

दल की राय थी कि इस विषय को अधिक अभ्यासिक रूप देना चाहिए। इस बात को स्वीकार किया गया कि कुछ देश इस लाभदायक दृष्टिकोण के प्रयोग में दूसरे देशों से आगे बढ़े हुए हैं और उनसे मूल्यवान पाठ सीखे जा सकते हैं, मगर इसके साथ ही दल ने यह भी महसूस किया कि किसी भी देश में वर्तमान स्थिति

पूरी संतोषप्रद नहीं है और किसी भी जगह पाठ्य पुस्तकों और भाषणों पर लम्बन को पूरी तरह त्याग कर बालक का अभ्यासिक अध्ययन नहीं किया जा रहा।

सुधार के उपाय

यह अनुभव किया गया कि ट्रेनिंग लेनेवाले विद्यार्थियों को और अधिक अवसर प्राप्त होने चाहिए जिनसे वे बालकों का साथ कर सकें और काम, खेल और अन्य सामाजिक दशाओं में उनका निरीक्षण कर सकें। इस निरीक्षण का मार्ग दर्शन अधिकतर ट्रेनिंग संस्था के कार्यकर्त्ताओं द्वारा होना चाहिए।

अध्ययन दल ने सुधार के लिए कई सुझाव उपस्थित किए। यद्यपि ये कुछ लोगों के लिए नए थे, कइयों के लिए काफी परिचित भी थे, मगर जहाँ ये सुपरिचित थे, वहाँ भी व्यावहारिक रूप में उनका प्रयोग बहुत कम हुआ था। निम्नांकित सक्रियताएँ, जिनका प्रयोग कई अध्यापकों की ट्रेनिंग-संस्थाओं में होता आया है, और अधिक विस्तार से प्रयोग में लाई जा सकती हैं।

(१) बालकों की स्कूल के बाहर की सक्रियताओं में भावी अध्यापकों द्वारा भाग लेना

यह अनुभव किया गया कि बालक के खेल में भाग लेने और उसे खेलते हुए देखने से भावी अध्यापक ऐसी मूल्यवान खोजें कर सकता है जो कक्षा में नहीं हो सकतीं। इस बात पर जोर दिया गया कि निरीक्षण असम्बद्ध नहीं होना चाहिए, कि इस निरीक्षण का अधिक भाग उस कालेज-प्राध्यापक की देखरेख में होना चाहिए जो बालक की वृद्धि और विकास के विषय को पढ़ाने के लिए उत्तरदायी है। उदाहरणार्थ यह एक सरल अभ्यास है जो एक कालेज में दिया जाता है, और जो समझदार निरीक्षण का सहायक प्रतीत होता है:

> खेल के मैदान में बच्चों का निरीक्षण करो। उनके खेलों की सक्रियताओं की एक सूची तैयार करो। वे एक दूसरे को कैसे सुधारते और आलोचना करते हैं, इसको नोट करो। नेता कौन हैं? क्या आप कोई कारण दे सकते हैं कि ये बच्चे नेता क्यों हैं? आप जो खेल बच्चों को खेलते देख रहे हैं, क्या आप उनका प्रयोग कक्षा में कर सकते हैं? अगर हाँ, तो किस अर्थ के लिए?

(२) विशेष बच्चों के विषय में अभिलेख तैयार करना

यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि व्याख्यानों और पुस्तकों का कथन तभी मुखरित होता है जब भावी अध्यापक ध्यानपूर्वक निरीक्षण करते और उसका अभिलेख रखते हैं। इस बात पर जोर दिया गया कि इन अभिलेखों को बनाने

में विद्यार्थियों को पर्याप्त मार्गदर्शन की आवश्यकता है। जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक, पदार्थ-विषयक रूप से यथार्थ सच्चाइयों के अभिलेख तैयार करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए। उन्हें सावधान कर देना चाहिए कि वे देखी गई सच्चाइयों की जल्दबाजी से व्याख्या करने की भूल न करें।

(३) भावी अध्यापकों को अभिलेख कार्ड से जानकारी कराना

कई स्कूली-पद्धतियों में अभिलेख-कार्ड उत्तरोत्तर महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उदाहरणार्थ कई स्कूलों में यह पद्धति पुरानी अविश्वास परीक्षा पद्धति का स्थान ले रही है जिसके द्वारा बालक का विद्या-विषयक भविष्य निर्धारित किया जाता है। दल के सदस्यों के लिए यह स्पष्ट था कि इन अभिलेखों की तैयारी, और विशेषकर उसकी व्याख्या सिखलाये गए अनुभवी स्कूली-सलाहकारों का कार्य है। मगर यह भी स्पष्ट था कि कक्षाओं के अध्यापकों की सहायता और मार्गदर्शन पर सलाहकार का कार्य निर्भर है और यह आवश्यक जान पड़ता है कि विद्यार्थियों को अभिलेख समझने की ट्रेनिंग दी जाए जिससे वे समझ-भरी सहायता दे सकें।

(४) ऐसे 'समाज वर्ग' बनाना जो बालकों के स्कूली दलों में पारस्परिक सम्बन्ध और पारस्परिक प्रतिक्रियाओं को दिखाए

बालकों के सामाजिक विकास पर बहस के दौरान में दल १ के अधिकांश सदस्यों को 'समाज-वर्ग' पद्धति का परिचय पहली बार प्राप्त हुआ। प्रतीत हुआ कि कक्षा में सामाजिक सम्बन्ध खोजने का यह अति उत्तम उपाय है जिससे बालकों के विषय में ऐसे सत्य जाने जा सकते हैं जो अध्यापकों के लिए तत्काल व्यावहारिक लाभ के होंगे। यह स्पष्ट था कि कालेज के विद्यार्थियों के सम्मुख इस पद्धति का वर्णन करना, इसके प्रयोग के उदाहरण देना और उसकी सराहना करने के समय भाषण देनेवालों को इसके दुरुपयोग के विषय में चेतावनी देनी पड़ेगी, मगर यह भी समझा गया कि इस पद्धति के प्रयोग से भावी अध्यापकों को बालकों के विकास का पदार्थ-विषयक अध्ययन करने का एक उपाय हाथ लग जायगा।

(५) बालक-मार्ग-दर्शन-गृहों में बालकों का निरीक्षण

पता चला कि अधिकांश अध्यापक-ट्रेनिंग-संस्थाओं के अपने बालक-मार्ग-दर्शन-गृह हैं जिनका प्रयोग वे बालक की वृद्धि और विकास के विषय को पढ़ाने के लिए करते हैं। पूरे दल को मालूम हुआ कि यह एक ऐसा उदाहरण है जिसका जहाँ भी सम्भव हो अनुकरण किया जा सकता है और भावी अध्यापकों द्वारा

ट्रेनिंग-प्राप्त सलाहकारों के कार्य का निरीक्षण पुस्तकें पढ़ने और भाषण सुनने से कहीं अधिक मूल्यवान सिद्ध होगा।

नियमबद्ध मानस-शास्त्र की शिक्षा

दल के दो सदस्यों ने सम्मति दी कि अगर पहले मानस-शास्त्र के सिद्धान्तों पर नियमबद्ध विचार किया जाए तो बालक की वृद्धि और विकास का अध्ययन आसान हो जाता है। उन्होंने इस बात की निन्दा की कि मानस-शास्त्र के विद्यार्थी अकसर बहुत अधिक विवरण के नीचे दब जाते हैं। अगर बुनियादी विचार को स्पष्ट रूप से उपस्थित किया जाए, और मानस-शास्त्र की भिन्न विचार-प्रणालियों से उन्हें अवगत किया जाए, तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। एक ने मनोविश्लेपण पद्धति के विशेष मूल्य पर जोर देने की इच्छा प्रकट की, मगर चेतावनी दी कि मनोविश्लेपण की शब्दावली और उसके विचारों का उच्छृंखल प्रयोग न किया जाए।

मगर इस दृष्टिकोण के साथ दल के अन्य सदस्यों की सहमति नहीं थी। उनका विचार था कि भूतकाल के नियमबद्ध तार्किक सिद्धान्तों से हटने की बहुत आवश्यकता है और शिक्षा देते समय विद्यार्थी या अध्यापक को यह सिखलाया जाए कि असली बालकों की सहायता करने के लिए असली बालकों का अध्ययन करना चाहिए। उनका विश्वास था कि शिक्षा बाल-व्यवहार के निरीक्षण से आरम्भ होनी चाहिए—स्कूल में और स्कूल के बाहर। संक्षेप में, उनका दृष्टिकोण वह था जो स्काटिश रिपोर्ट 'अध्यापकों की ट्रेनिंग' में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया :

> इस अनुभव द्वारा उसे (अर्थात् विद्यार्थी-अध्यापक को) यह सीखना चाहिए कि वह किसका निरीक्षण करे और कैसे करे, और उसके निरीक्षणों पर दल-बहसें उसे सीधे मानस-शास्त्र विशेष की ओर ले जाएँगी। इस प्रकार उसे बालक के विकास की पूरी जानकारी होगी और उसे पता चलेगा कि बालकों से व्यवहार में मानस-शास्त्र उसकी क्या सहायता कर सकता है और किस प्रकार उसे बालकों के सामने उनके विकास के अनुसार शिक्षा-सक्रियताएँ उपस्थित करनी चाहिए। इस प्रकार उसे वह मानसिक अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी जो अध्यापक के लिए मानस-शास्त्र के ज्ञान से अधिक महत्त्वपूर्ण है। साथ ही उसमें बालकों की नियमबद्धसमझ उत्पन्न होगी और वह उनके विकास की स्वतंत्रता का आदर भी करेगा। हाँ, अन्त में इस प्रकार प्राप्त हुए ज्ञान को नियमबद्ध करने की क्रिया आवश्यक है और विद्यार्थी के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे विज्ञान के अपने सही रूप में मानस-शास्त्र की पूरी समझ प्राप्त हो।

जोर दिया गया कि अगर हमारा ध्येय बालक के विकास की सच्ची समझ और इस समझ के व्यावहारिक प्रयोग की अध्यापकों में क्षमता है—तो हमें काम-की-अवधि-में-शिक्षा पर अधिक जोर देना पड़ेगा। 'अध्यापक-शिक्षा' पर संयुक्त राष्ट्र कमीशन के 'काम-की-अवधि-में' नामक विभाग के कार्य विवरण से दल के सभी सदस्य प्रभावित हुए। अमेरिकन अध्यापकों को अपनी असली कक्षा-समस्याएँ समझने और 'शिविर' विधि से विशेषज्ञों की सहायता द्वारा अपने ही समाधान खोज निकालने का जो अवसर प्राप्त है, वह एक ऐसा अध्यापक-शिक्षा का सुझाव प्रतीत हुआ जिसे शीघ्र अपनाया जा सकता है।

अधिकांश इस बात पर सहमत हुए कि बालक-विकास का ज्ञान जो अनुसंधानों से सच्चा प्रमाणित हुआ है, उसका शिक्षा प्रणाली पर पूरा प्रभाव नहीं पड़ा। इसका कुछ हद तक कारण यह है कि यह अनुसंधान प्रयोगशाला जैसे वातावरण में किया गया है—जो अत्युत्तम होने पर भी यथार्थ स्कूल-वातावरण की तुलना में कृत्रिम है—और जिसे करनेवालों का न केवल स्कूल के बच्चों से बहुत कम सरोकार है बल्कि वे अपनी खोजों को मूर्त रूप देने का उत्तरदायित्व भी नहीं रखते। इसके साथ ही अनुसंधान के नतीजों को अध्यापकों तक पहुँचाने के साधन भी अधिकतर अपर्याप्त हैं। अनुसंधान और उसके प्रयोग के बीच की खाई को कम करने के लिए यह सुझाव दिया गया कि बालक की वृद्धि और विकास से सम्बन्धित अनुसंधानों के लिए अध्यापकों को उत्साहित करना चाहिए कि वे विशेषज्ञों को सहयोग दें।

इसे सम्भव करने के लिये कुछ शर्तें आवश्यक हैं:

(१) भावी अध्यापकों और काम-की-अवधि-में-शिक्षा लेनेवाले अध्यापकों का कार्य करने का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें अनुसंधान के लिए सक्रिय प्रोत्साहन दिया जाए।

(२) काम-की-अवधि-में-शिक्षा का एक निरंतर कार्यक्रम होना चाहिए जिसमें अध्यापक खुलकर भाग ले सकें और जिसे वे अपने पेशे के काम का एक अभिन्न अंग समझें।

(३) इन कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए अध्यापकों को पर्याप्त समय मिलना चाहिए।

(४) इन कार्यक्रमों के माध्यम से जो अनुसंधान किया जाए, उसमें अध्यापकों को विशेष दिलचस्पी होनी चाहिए और उसका सम्बन्ध उनके दिन प्रति दिन के कार्य से होना चाहिए ताकि उनके शिष्यों को उत्तम से उत्तम शिक्षा प्राप्त हो।

(५) आवश्यक है कि अध्यापकों के साथ कार्य करने और सलाह-कारों के रूप में योगदान देने के लिए अनुसंधान-विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त हो।

(६) अनुसंधान की प्रत्येक मंजिल पर, अध्यापकों में यह इच्छा और क्षमता होनी चाहिए कि वे पदार्थ-विषयक निर्णय कर सकें।

सहयोगी अनुसंधान की इन योजनाओं के विषय में और सविस्तार सूचना अध्यापक-शिक्षा कमीशन (अमेरिकन काउन्सिल आन एजूकेशन, वाशिंगटन, डी० सी०, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) के आठ ग्रन्थों में पाई जा सकती है, विशेषकर उन दो ग्रन्थों में जिनके शीर्षक हैं 'काम-की-अवधि-में अध्यापक की शिक्षा' और 'बालकों को समझने में अध्यापकों की सहायता करना'।

वे अध्यापक जो अपने काम से सीधा सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं पर अनुसंधान में दिलचस्पी रखते हैं जिसके लिए असली स्कूली-वातावरण में खोज आवश्यक है, निम्नलिखित सक्रियताएँ उपयोगी पाएँगे। इनमें से कुछ का उल्लेख पहले भी आ चुका है।

(१) बालकों के विषय में अभिलेख रचना

ये अभिलेख जो विवरणात्मक होंगे—व्याख्यात्मक नहीं—एक लम्बी अवधि में बालक का आचरण व्यक्त करेंगे। इनकी सहायता से अध्यापक और भी अच्छी तरह प्रत्येक बालक की आवश्यकताएँ पूरी कर सकने में समर्थ होगा—और सभी बच्चों के आचरण की पूरी समझ उसमें आ जाएगी।

(२) दल के सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध का 'समाज-वर्ग' बनाना

यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा अध्यापक प्रत्येक बालक की आवश्यकताओं और दल के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में अधिक स्पष्ट अंतर्दृष्टि पा सकता है। बालकों को इस प्रकार के प्रश्न पूछ कर जैसे 'कमरे में जितने भी लड़के और लड़कियाँ हैं, उनमें से किसके साथ तुम खेलना (या काम करना) पसन्द करोगे?' अध्यापक ऐसी सूचना प्राप्त कर सकता है जो उसे दल और व्यक्ति के सारे सम्बन्ध बता दे। अकेले बच्चे, आकर्षक बच्चे, अस्वीकृत बच्चे, बच्चों के उप-दलों का दल से सम्बन्ध सभी प्रकार के सम्बन्धों के विषय में सच्ची गवाही इस प्रकार प्राप्त हो जाती है। आसानी से पता चल जाता है कि कौन से दल के सदस्य एक दूसरे से आकर्षित हैं, ऐसी अवस्था समझने में देर नहीं लगती जिसमें एक बालक एक दल के सदस्य द्वारा अस्वीकृत किया जाता है जिसकी ओर वह आकर्षित होता है, ऐसे बालकों का पहचाना जा सकता है जो दल द्वारा

स्वीकृत हैं, अस्वीकृत हैं, या बिलकुल उदासीनता से देखे जाते हैं, और इस प्रकार पूरे दल के काम व ढांचे में व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध का व्यौरा आसानी से आँका जा सकता है। 'बालकों को समझने में अध्यापकों को सहायता' (ऊपर उल्लेख देखें) किंवदंति अभिलेखों और 'समाज-वर्ग' दोनों का सविस्तार वर्णन करता है। (देखें परिशिष्ट अ)

(३) अध्ययन करना कि सच्ची दल-योजना किस पर आधारित है

उन साधनों में अनुसंधान और प्रयोग करना जिनके द्वारा अध्यापक बालक-नेताओं के काम का मार्गदर्शन कर सकें और गुरु-शिष्य की सक्रियताओं की योजना के विषय में अध्यापकों की भिन्न प्रतिक्रियाएँ—ये दो उपाय हैं जो अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। अनुसंधान के विषय पर दो नए प्रकाशन हैं 'ए गाइड टु स्टडी एण्ड एक्सपेरीमेंटेशन इन को-आपरेटिव प्लानिंग' और 'दि रोल आफ दि टीचर इन टीचर प्यूपिल प्लानिंग' जिनके प्रकाशक हैं होरेस मैन-लिंकन इंस्टीट्यूट इन स्कूल एक्सपेरीमेंटेशन, टीचर्स कालेज, कोलंबिया यूनीवर्सिटी, न्यूयार्क, यू० एस० ए०।

(४) दल नियंत्रण के विषय में अध्यापक के कार्य पर विचार करना

वे अध्यापक जो अपने दल-नियंत्रण के उपायों का अध्ययन करते हैं, वे काफी आसानी से निर्णय कर सकते हैं कि भिन्न प्रकार के नियंत्रण भिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं पर कैसे काम करेंगे।

(५) भिन्न प्रकार के दलों की बनावट पर अनुसंधान करना कि वे किस तत्परता से अमुक कार्य को पूरा करते हैं

आकार, समानता, नेतृत्व के गुण इत्यादि के आधार पर दल बनाकर बालक व अध्यापक कक्षा में यह प्रयोग कर सकते हैं कि किस प्रकार का दल किस प्रकार के भिन्न कार्य कुशलता से पूर्ण करता है।

(६) धीरे-धीरे सीखनेवालों को बुनियादी निपुणता में कुशल करने के उत्तम साधनों की खोज करना

कुछ अनुसंधान जिनके नतीजे अब प्राप्य हैं यह दर्शाते हैं कि धीरे सीखनेवाले के सामाजिक वातावरण को बदलना एकांत सुधार कार्य से अधिक लाभकर

है। इस सर्व-व्यापी और महत्त्वपूर्ण प्रश्न का हल अधिक अनुसंधान और प्रयोग द्वारा होगा जो कक्षा की परिस्थितियों में किए जाएँगे।

(७) किस हद तक स्कूल का कार्यक्रम शिक्षा की सक्रियताओं को एकत्रित करते हुए व्यक्ति को सर्वतोन्मुखी वृद्धि और विकास की ओर ले जाता है

स्कूल के एक सप्ताह की अवधि में बालकों का एक अमुक दल अपना समय किस प्रकार व्यतीत करता है, इसका अभिलेख रखकर और उसकी व्याख्या करके यह निर्णय किया जा सकता है कि स्कूल का प्रोग्राम क्रियात्मक सक्रियताओं के अवसर देने में (जैसे दल-योजना, आराम व खेल, बुनियादी निपुणता की ओर व्यक्ति का ध्यान, बैठकर करनेवाले कार्य, दल द्वारा प्रश्नों का हल, इत्यादि) उपयुक्त रहा है या नहीं। इस प्रकार के अध्ययन और विश्लेषण के नतीजे एक ऐसी जमीन देते हैं जिससे न केवल वर्तमान चलन की उपयोगिता का पता चलता है बल्कि सुधार के नए रास्ते भी निकल आते हैं।

२. व्यक्ति के रूप में अध्यापक—भरती करने के विषय में अन्य प्रश्न

समय-समय पर दल १ के सदस्यों ने पाया कि बालकों की वृद्धि और विकास के विषय पर विचार अंततः उन्हें अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य के प्रश्न की ओर ले गया। स्कूल में लड़के व लड़कियों पर क्या बीतती है, यह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि जिन अध्यापकों के साथ उन्हें काम करना है उनके व्यक्तित्व की वृद्धि और विकास कितना हुआ है। भिन्न प्रयोग-अध्ययनों से स्पष्ट पता चलता है कि अध्यापकों की भावनाओं की स्थिरता का प्रभाव उनके शिष्यों पर भी पड़ता है। दुखी, निराश, असंतुष्ट अध्यापकगण अपने शिष्यों को प्रसन्न, सुव्यवस्थित नवयुवक बनने में सहायता नहीं दे सकते।

दल ने कुछ विस्तार में उन परिस्थितियों पर विचार किया जो अध्यापक के व्यवसाय की विशेषता है और उसके व्यक्तित्व विकास में बाधाएँ डालती हैं। चूँकि अधिकतर देशों में सही किस्म के लोगों को नौकर रखने और उन्हें अध्यापक के व्यवसाय में जारी रखने का एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, दल ने संभव सुधारों पर विचार किया। निम्नांकित पैरे व्यक्तियों के रूप में अध्यापक पर बहस का निचोड़ हैं जो और अधिक अनुसंधान पर जोर देते हैं, वे भरती करने के अन्य प्रश्नों का भी विवरण करते हैं जिनका उल्लेख निहित था।

वर्तमान शिक्षा-विशेपज्ञों में यह विचार उत्तरोत्तर जोर पकड़ता जा रहा है कि शिक्षा के प्रश्न में बच्चों के स्वभाव व आवश्यकताओं को केन्द्र बनाना ही पर्याप्त नहीं है। जरूरी है इससे आगे जाना और कक्षा या स्कूल के पूरे क्षेत्र का अध्ययन करना और स्कूल के आस-पास काम करते हुए भिन्न तत्त्वों व शक्तियों के स्वभाव को समझना। बालकों की आवश्यकताओं पर जोर देते हुए शायद अध्यापकों के स्वभाव और आवश्यकताओं को दष्टिगोचर किया गया है। यह सच्चाई है कि अध्यापकों के मनोविज्ञान की अपेक्षा बालकों के मनोविज्ञान के विषय में अधिक जानकारी मौजूद है। फिर भी यह स्पष्ट है कि बालक की वृद्धि और विकास पर वृहत् ज्ञान का पूरा और सक्रिय उपयोग अध्यापक नहीं कर सकते, जब तक उनकी अपनी आवश्यकताएँ, स्कूल में व स्कूल के बाहर, कुछ हद तक पूर्णता को प्राप्त नहीं हो जातीं।

अन्य व्यवसायों की भाँति अध्यापक के व्यवसाय में भी निराशाएँ हैं। भूत-काल में झुकाव यह था कि इन्हें कम वेतन, धीमी तरक्की और काम को बुरी हालतों का नतीजा कहकर छोड़ दिया जाए। मगर हमारा ध्येय यहाँ निराशा के कुछ कम स्पष्ट कारणों की ओर संकेत करना है, जिनके विषय में अनुसंधान लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

(१) व्यवसाय के लिए अध्यापक के कार्य का चुनाव

यह स्पष्ट नहीं है कि पुरुष व स्त्रियाँ अध्यापक क्यों बनते हैं। हो सकता है कि कुछ अध्यापन का निर्वाचन इसलिये करते हैं कि इस काम में उन्हें कुछ निश्चित आकर्पण है, कई अधिक अच्छा कार्य न मिलने के कारण ही इस तरफ बह निकलते हैं, और कइयों की योजना होती है अध्यापन को ऊपर चढ़ने की सीढ़ी का एक छड़ बनाना और फिर किसी अन्य व्यवसाय में चले जाना। इस दशा में चाहे उनकी कार्य-परिस्थिति कितनी भी अच्छी क्यों न हो, उन्हें अपने कार्य में निराशा प्राप्त होगी। यह निराशा व्यवसायी-दल में कमी पैदा कर सकती है, अपूर्णता की व्यक्तिगत भावनाएँ जगा सकती है और साथियों व बच्चों के प्रति खुली या छुपी हुई दुश्मनी का आरम्भ कर सकती है।

अध्यापन के लिए सबसे उचित व्यक्तित्व कैसा हो, इसमें अनुसंधान की आवश्यकता है। कई अनुसंधान करने वालों ने देखा है कि किसी व्यवसाय के सदस्य किसी व्यक्ति विशेष के प्रतिरूप होते हैं। यह दर्शाया जा चुका है कि 'वस्तुओं के स्थान पर व्यक्तियों' में दिलचस्पी ही व्यवसाय के चयन में बुनियादी तत्त्व होता है और अवश्य ही अध्यापन को व्यवसाय के रूप में चुनने का कारण

भी यही है। यह उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि व्यवसाय का चुनाव एक अव्यवस्थित कार्य नहीं है, न यह आर्थिक शक्तियों का ही नतीजा है। जैसा लो* ने कहा है, 'किसी के जीवन कार्य की तथाकथित घटना कभी अवसर की बात नहीं होती, बल्कि इसका संचालन शक्तिशाली अचेत इच्छाओं द्वारा होता है—जिनका फल होता है अच्छे या बुरे व्यवसाय का चुनाव'।

इसके अलावा अध्यापन के लिए स्वाभाविक व उपार्जित योग्यताओं के विषय में पर्याप्त जानकारी नहीं है। बोलने या काम करने की सुगमता के अभाव में अध्यापन के कार्य में कठिनाइयाँ आ सकती हैं और इस तरह निराशा की उत्पत्ति हो सकती है। कई असंतुष्ट अध्यापक प्रबन्ध में अधिक खुश रह सकते हैं। योग्यताओं की और अच्छी समझ ऐसे मार्ग का निर्माण कर सकती है जिससे अध्यापकों और अन्य व्यक्तियों की नियुक्ति शिक्षा के ढाँचे में सुचारु रूप से हो सके।

प्रधानतया आजकल अध्यापकों का चुनाव अनियमित और छिछला होता है क्योंकि अध्यापकों के मनोविज्ञान की अधिक जानकारी नहीं है। सही चुनाव से उद्गम पर ही उन निराशाओं की छंटाई हो जाएगी जो बाद में पैदा होती हैं।

(२) काम की अवधि में अध्यापकों का विकास

यह जानने की बहुत जरूरत है कि काम में लगे अध्यापकों के व्यक्तित्व पर क्या बीतती है। भूतकाल में जोर इस बात पर था कि बच्चों पर अध्यापक क्या प्रभाव डालते हैं लेकिन बच्चों का प्रभाव अध्यापक पर क्या होता है, इस प्रश्न को हमेशा दृष्टिगोचर किया गया है।

प्रत्येक व्यवसाय उसमें काम करनेवालों पर कुछ छाप छोड़ता है। अध्यापन में यह बात विशेष रूप से सत्य है। इसमें बालकों का सदा साथ, जिसमें वयस्कों की दुनिया से कुछ समय के लिए अलगाव भी है, ऐसे ढंग, आदतें और बर्ताव के तरीके उत्पन्न कर सकना है जिनसे अध्यापकों के असर में जल्दी ही कमी आ जाती है—उनके बालकों के साथ के काम में भी और वयस्कों के साथ उनके सम्पर्क में भी। शायद इस प्रचलित विचार में कुछ सच्चाई है कि किसी को भी ५ या १० वर्ष से अधिक नहीं पढ़ाना चाहिए क्योंकि व्यक्तित्व पर अध्यापन के प्रभाव अच्छे नहीं होते। दूसरी ओर, सबसे मूल्यवान और प्रभावयुक्त अध्यापन अधिकांशतः वही अध्यापक कर सकते हैं जो आयु और अनुभव में पक चुके हैं। लम्बे और निरंतर अनुभव से अध्यापक क्षीण होता है या व्यक्ति के विकास में अध्यापन सहायक होता है, यह उन प्रभावों पर निर्भर करता है जिनके

* बारबारा लो, दि अनकांशस इन ऐक्सन (यूनीवर्सिटी आफ़ लंदन प्रेस १९२८)

विषय में अभी तक अपर्याप्त अध्ययन हुआ है। मगर चूंकि बढ़ती नस्ल पर अध्यापकों का विशेष प्रभाव पड़ता है, इसलिए अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व विकास के अध्ययन पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(३) समाज से अध्यापक का सम्बन्ध

जब कि अकेलेपन का रोग जिससे अध्यापक पीड़ित हो सकते हैं कुछ हद तक उनके अंतर की अवस्थाओं के कारण होता है, मगर बहुत कुछ यह उस समाज के आचरण के कारण होता है जिसमें अध्यापक रहता है। वालर* कहता है कि अध्यापक 'अकेला पड़ जाता है क्योंकि समाज उसे अकेला छोड़ देता है। समाज उसे देवता से अधिक और मनुष्य से कम समझने पर जोर देता है। क्योंकि अध्यापक को अध्यापक के अनुरूप ही रहना चाहिए, इसलिए वह मनोवैज्ञानिक रूप से समाज से अलग-अलग रहता है।'

व्यावसायिक प्रतिरूप से अधिक प्रचलित जाति प्रतिरूप और मनुष्यों की जातियों के विषय में प्रचलित ठीक या गलत विचार हैं। मगर कई व्यवसायों के सदस्यों के विषय में न केवल गलत धारणाएँ मौजूद हैं बल्कि इनका प्रभाव समाज के इनके प्रति दृष्टिकोण व आचरण पर भी पड़ता है। प्रत्येक समाज में 'अध्यापक का प्रतिरूप' जैसा मुहावरा प्रचलित है।

कई कारणों से अध्यापक का यह प्रतिरूप अनुकूल नहीं है। अध्यापक का दोहरा कार्य है। अपने आप व्यक्त करने में बालक की वह सहायता करता है मगर साथ ही बालक की कुछ प्रवृत्तियों को रोकता भी है। इस प्रकार अध्यापक के लिए भिन्न मात्राओं में आदर भी होता है और शत्रुता का भाव भी रहता है। दुर्भाग्य से ये विद्रोही भावनाएँ बचपन में ही समाप्त नहीं हो जातीं। अध्यापकों के प्रति प्रौढ़ संसार का आचरण इन्हीं भावनाओं के वशीभूत होकर होता है। शायद यही कारण है, जिसे अधिकतर स्वीकार नहीं किया जाता कि किशोर व किशोरियाँ अध्यापक के व्यवसाय को अपनाना नहीं चाहते। इसी का प्रभाव अध्यापक पर खुद भी पड़ता है, जिससे प्रभावित होकर वह अपने दल का व अपना मूल्यांकन करता है। यह भी कहा जा सकता है कि सामाजिक शिक्षा का एक मुख्य काम यह है कि वह अध्यापकों के प्रतिरूप को जनता के मस्तिष्क से निकाल दे।

ये उन शिक्षा-अनुसंधान के प्रश्नों में से कुछ है, जिन पर पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया गया। इस कथन में कुछ सत्य है कि "शिक्षा-विषयक सभी प्रश्नों की कुंजी

---

* वालर, डब्ल्यू०, दि सोशियोलॉजी आफ़ टीचिंग। न्यूयार्क, जान विली एण्ड सन्स, इंक०, १९३२

बालक नहीं, अध्यापक है। शायद आधी दर्जन पद्धतियों में से कोई एक भी ठीक कार्य करेगी अगर कक्षाओं के बालकों की देखरेख सही व्यक्तियों के हाथ में हो।" मगर इसमें अधिक सच्चाई है कि इस "शिक्षा विषयक प्रश्नों की कुंजी" न बालक को समझें और न अध्यापक को, बल्कि पूरे विषय का अध्ययन और इसके अन्दर भिन्न तत्त्वों के पारस्परिक सम्बन्ध को शिक्षा-विषयक अनुसंधान का केन्द्र बनाएँ।

भरती करने के अन्य प्रश्न

कुछ सूक्ष्म व कुछ स्पष्ट प्रभावों की बहस के बाद, जिनका असर अध्यापन के कार्य के चुनाव के विषय में किशोरों पर पड़ता है, और जिनसे अध्यापकों व उनके कार्य के विषय में अध्यापकों व अन्य लोगों में वृत्तियों का निर्माण होता है, दल के सदस्यों ने दशा को सुधारने की संभावनाओं को परखा। उन्होंने एक दूसरे से पूछा कि अध्यापकों का व अध्यापन व्यवसाय का आदर बढ़ाने के लिए कौन-कौन से कदम उठाए जा सकते हैं। उन्होंने कई सुझाव रखे। शायद उनमें से कोई भी नया नहीं है। मगर चूँकि ये एक दर्जन भिन्न देशों के चौदह व्यक्तियों के विचारों का निचोड़ है, इसलिए उनका उल्लेख करना लाभकारी होगा।

(१) वर्तमान समाज में अच्छा जीवन विताने के साधन अध्यापकों को प्राप्त होने चाहिए

(अ) यह स्पष्ट है कि अध्यापकों के आर्थिक लाभ अधिक होने चाहिए। इसका अर्थ यह होगा कि न केवल उनके वेतनों में वृद्धि और उनके लिए उपयुक्त पेंशन का प्रबन्ध हो बल्कि जो शिक्षा या प्रबन्ध के ऊँचे पदों पर पहुँच गए हैं, उनके लिए पर्याप्त अधिक वेतनों की भी व्यवस्था हो। यह महसूस किया गया कि यह नीति योग्य और उपयुक्त नवयुवकों को प्रोत्साहन देगी कि वे अध्यापन व्यवसाय को अपने जीवन का कार्य बनाकर इसमें आयें। इस दशा में यह व्यंग्य कसना संभव न हो सकेगा कि अध्यापन एक उच्च-विचारों का व्यवसाय है जिसमें जाने की सलाह आदर्शवादी कम-भूख रखनेवाले नवयुवकों को ही दी जा सकती है। अगर अध्यापन एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, तो शिक्षा में जो लोग बड़े उत्तरदायित्व संभालते हैं उनके लाभ उतने होने चाहिए कि अन्य व्यवसायों में मिलनेवाले वेतनों से मेल खा सकें।

(आ) अध्यापकों के कार्य की दशाएँ आकर्षक बनाई जानी चाहिए। स्कूल स्फूर्तिदायक स्थान होने चाहिए, शिक्षा के वर्तमान विचारों के अनुसार आवश्यक सामान व औज़ार अध्यापक को प्राप्य होने चाहिए, और सभी व्यक्तियों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध उच्चतर स्तर के होने चाहिए।

(इ) अध्यापकों का वातावरण संतोषप्रद जीवन के लिए उचित होना चाहिए। अधिकारियों को ध्यान रखना चाहिए कि उपयुक्त घर प्राप्य हैं। स्कूल के बाहर के जीवन पर असंगत व अनावश्यक प्रतिबन्ध हटा देने चाहिए। ऐसे प्रतिबन्ध, जो अधिकतर देशों में पाए जाते हैं, अनिवार्य रूप से कई उपयुक्त व्यक्तियों को इस व्यवसाय में आने से रोकते हैं।

(२) स्कूल व समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के मार्ग और अधिक प्रभावयुक्त बनाने चाहिए

(अ) स्कूलों के काम के विषय में प्रचार बढ़ाना और सुधारना चाहिए। शिक्षा देनेवालों के काम के प्रति जनता की उदासीनता का कारण अधिकतर अज्ञान होता है जो अध्यापक खुद मिटा सकते थे। उनके स्कूल क्या कर रहे हैं, इसकी सूचना जनता को देने के लिए रेडियो, समाचार-पत्र व सिनेमा का अधिक प्रभावकारी उपयोग किया जा सकता है।

(आ) प्रत्येक स्कूल या स्कूल के सिलसिले का जनता-सम्पर्क कार्यक्रम सच्चे रूप में द्विमुखी होना चाहिए। समाज-सक्रियताओं के लिए केन्द्रों के रूप में स्कूलों के भवन जनता के लिए प्राप्त होने चाहिए जैसे वे बच्चों की शिक्षा के लिए प्राप्त हैं। शिक्षा के कुल सामाजिक उत्तरदायित्व का एक प्रत्यक्ष भाग बालकों के माता-पिता को भी लेना चाहिए। ठीक रीति से चलाए जाएँ, तो 'माता-पिता अध्यापक संघ' स्कूल व समाज के सम्बन्ध को पूर्ण रूप से शक्तिमान बनाने में सहायता दे सकते हैं।

(इ) अध्यापन के कार्य से उत्पन्न संतोष उन किशोरों को दर्शाया जा सकता है जो व्यवसाय का चुनाव कर रहे हैं और उन प्रौढ़ों को भी जिनकी सलाह का असर इस चुनाव पर बहुत पड़ता है।

व्यवसाय के प्रति श्रद्धा बढ़ाने का उत्तरदायित्व कक्षा के अध्यापकों का भी उतना ही है जितना शिक्षा सम्बन्धी अधिकारियों और प्रशासकों का। किसी अच्छे अध्यापक के लिए यह स्पष्ट है कि उसका कार्य खुशी व गर्व से किया जा सकता है। सामाजिक दृष्टि से इसका बहुत महत्त्व है और इसमें बहुत कम कार्य उबाने वाला होना चाहिए। बालकों को सफलतापूर्वक अपनी कठिनाइयाँ लाँघते देखकर उसे उच्चकोटि का संतोष प्राप्त होता है। चपलता का साथ और युवावस्था के उत्साह का सम्पर्क उसे प्रसन्नता देता है।

फिर भी बहुत से अध्यापक अपने असंतोष और अपनी शिकायतों से रंगरूटों को डरा कर भगा देते हैं। कुछ असुविधाओं के बावजूद, अध्यापन ऐसा कार्य है जिसकी सच्ची सिफ़ारिश सही किस्म के बालक और बालिका को की जा सकती

है। अगर अध्यापक, उसकी संस्थाएँ और शिक्षा संबंधी अधिकारीगण इस बात को बतलाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें, तो बहुत कुछ किया जा सकता है।

किशोरों में अध्यापन के कार्य की दिलचस्पी पैदा करने के कई विशेष उपाय सुझाए गए हैं और प्रत्यक्षतः भिन्न देशों में सफलतापूर्वक अपनाए भी गए हैं। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के कुछ भागों में हाई स्कूल के विद्यार्थियों को बालकों के साथ कक्षा में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। जहाँ यह अनुभव बहुत छोटे बच्चों के साथ हुआ है, वहाँ यह उपाय विशेषकर सफल रहा है। एक और उपाय है अध्यापकों के कालेज के जीवन की आकर्षक फ़िल्में दिखाना, और एक और उपाय है पुस्तिकाएँ तैयार करना जिनमें उस संतोष पर ज़ोर दिया जाए जो किसी भी उपयुक्त अध्यापक को अपने काम के लिए प्राप्त होता है।

भरती के लिए प्रचार केवल किशोरों को दष्टि में रखकर नहीं करना चाहिए। सच है कि व्यावसायिक चुनाव पूर्ण रूप से किशोर का चुनाव है। मगर ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जिन्हें बीसवें या तीसवें वर्ष में पता चलता है कि अध्यापन ऐसा कार्य है जिसे करना वे सचमुच पसन्द करेंगे। इंगलिश इमर्जेंसी ट्रेनिंग स्कीम से जैसा स्पष्ट है, अगर ऐसे लोगों को हम 'दूसरा अवसर' दें, तो हम उपयुक्त अध्यापकों की संख्या को काफ़ी बढ़ा सकते हैं।

(३) अध्यापकों व अध्यापन की प्रतिष्ठा बढ़ाने का बड़ा उत्तरदायित्व खुद व्यवसाय के सदस्यों पर निर्भर है

(अ) प्रथम आवश्यकता अध्यापक की शिक्षा की विशेपता है। इस विषय में निश्चित होते हुए दल के कुछ सदस्यों ने बहस में कहा कि अध्यापकों की तैयारी को विश्वविद्यालयों के साथ अधिक पूर्णता से जोड़ना चाहिए। अन्य लोग इस विषय में निश्चित नहीं हुए कि अध्यापक-शिक्षा की विशेपता को बढ़ाने का यह एकमात्र अथवा उत्तम उपाय है। सर्वसम्मति यह थी कि उद्देश्य और विस्तार में अध्यापन के लिए तैयारी अन्य व्यवसायों के लिए तैयारी से कम श्रेणी की नहीं होनी चाहिए।

(आ) अध्यापकों के कार्य का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें उत्साह के कार्य और रचनात्मक प्रयत्न पनप सकें। यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कई देशों के कई अध्यापकों को अब भी अधिक, मनमाने और अनियंत्रित पर्यवेक्षण (देखरेख) में रखा जाता है और कि यह पर्यवेक्षण अच्छे व्यक्तियों को व्यवसाय से बाहर रखता है। हमें एक ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए जिसमें अध्यापकों को प्रयोग करने, शासन-नीति में भाग लेने और सहकारी प्रयत्न में योगदान देने

के कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता महसूस हो। केवल ऐसे ही दल-वातावरण से बुद्धिमान, स्वतन्त्र, रचनात्मक व्यक्ति आकर्षित हो सकेंगे।

(इ) दिन प्रतिदिन के कार्य की विशेषता द्वारा कक्षा के अध्यापक अपने-आप एक बड़ा कर्त्तव्य पूरा कर सकते हैं। कई उपयुक्त युवा व्यक्ति अध्यापन व्यवसाय से किनारा करते हैं क्योंकि कई अध्यापक उबा देनेवाला कार्य उदासीन रीति से करते हैं। दूसरी ओर, ऐसे अध्यापकों द्वारा जिनका अपने कार्य में हर्ष स्पष्ट है और जिनका उत्साह संक्रामक होता है, कुछ व्यक्ति इस व्यवसाय की ओर आकृष्ट होते हैं। जब हमारे पास इस प्रकार के अध्यापक अधिक होंगे तो अधिक गौरव के रास्ते की सबसे महत्त्वपूर्ण रुकावट हट चुकेगी।

(ई) व्यवसाय की संस्थाओं में अध्यापकों का सक्रिय योग अध्यापकों व अध्यापन के प्रति जनता के विचारों को सुधार सकता है। यह विशेषतया सत्य होगा यदि ये संस्थाएँ न केवल अध्यापक-कल्याण में बल्कि मुख्य शिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों में भी अपनी तीव्र रुचि दिखाएँ।

(४) जो जन-समूह (समाज) शिक्षा की महत्ता के विषय में निश्चित है, उन्हें अध्यापकों की तैयारी का अधिक वित्तीय उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए

(अ) कई देशों में अब भी यह सामान्य बात है कि माध्यमिक स्कूल के होनहार विद्यार्थी आर्थिक दशाओं के कारण जीविका कमाने के लिए स्कूल छोड़ने को बाध्य होते हैं। ऐसे विद्यार्थियों को अपनी पाठचर्या समाप्त करने के लिए आर्थिक सहायता मिलने का प्रबन्ध होना चाहिए। यह सहायता अध्यापन व अन्य व्यवसायों के लिए और रंग रूप पैदा करेगी।

(आ) ट्रेनिंग लेते हुए विद्यार्थियों को अच्छी आर्थिक सहायता भी उपर्युक्त रंगरूटों को आकर्षित करने में सहायक सिद्ध होगी। आजकल कुछ देश पर्याप्त भत्ता देते हैं, मगर कुछ देश बहुत कम या कुछ भी नहीं देते।

३. शिक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय समझ

दल १ की चिन्ता का केन्द्र था बालक की वृद्धि और विकास का विषय। अधिकांशतः हम यह जानने के लिए उत्सुक थे कि दल के सदस्यों के प्रतिनिधि देशों में इस पर क्या विचार करते हैं और अध्यापकों को कैसी सहायता दी जा सकती है जिससे वे बालकों के व्यक्तिगत व सामाजिक विकास को बढ़ावा दे सकें। शिशु से लेकर किशोर तक की भिन्न विकास की अवस्थाओं पर हमने बहस की। इस विकास के शिक्षा सम्बन्धी परिणामों के विषय के सुझावों का आदान-प्रदान

हुआ और दल के प्रत्येक सदस्य को अवसर मिला कि वह अपनी दिलचस्पी के एक विशेष विषय पर बहस को आरम्भ करे।

दल इस विषय में सचेत था कि यूनेस्को का हमें एकत्रित करने का एक मुख्य उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों में अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए उत्साह पैदा करने के हेतु अध्यापकों को किस प्रकार सहायता दी जा सकती है। सो हमने कुछ समय इस बहस में लगाया कि किस प्रकार बालक की वृद्धि व विकास की अवधि में उसमें अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए उपयुक्त दष्टिकोण पैदा किए जा सकते हैं।

अच्छे अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को सम्मुख रखकर कई देश अध्यापकों को अन्तर्राष्ट्रीय समझ के भावी नेता, और उनके स्कूलों को शान्ति के भावी साधन समझते हैं।

सच है कि यह काम आसान नहीं। कई व्यक्तियों ने हाल के इतिहास में आशा की झलक देखी है। तानाशाही देशों की विकृत शिक्षा के अद्वितीय प्रभाव के विषय में सोचते हुए उन्होंने कल्पना की है कि शान्ति के लिए भी स्कूल इसी प्रभाव से काम कर सकते हैं—शर्त यह कि उसी शक्ति व उत्साह से कार्य किया जाए। दुर्भाग्य से सुलझन इतनी सरल नहीं है।

तानाशाही देशों में जो हुआ वह यह था कि शिक्षा का स्थान ट्रेनिंग ने ले लिया। युवा नागरिकों और वयस्कों को भी, कवायद कराई गई और उन्हें राज्य की आज्ञाकारी सेवा के लिए ट्रेनिंग दी गई। और, जैसे एम० एल० जैक्स और अन्य लोगों ने हमें स्मरण कराया है, 'ट्रेनिंग और शिक्षा के बीच एक बहुत बड़ी खाई निर्धारित है।' तानाशाही दर्शन-शास्त्र समतल और स्पष्ट था। मुसोलिनी ने उसका सार इस प्रकार दिया, 'सब कुछ राज्य के लिए होना चाहिए, राज्य के बाहर कुछ नहीं, राज्य के विरुद्ध कुछ नहीं।' जब एक पूरा राष्ट्र इस सरल, मगर भयभीत, दर्शन-शास्त्र को स्वीकार करता है तो स्कूल का कार्य सरल हो जाता है—उतना ही सरल जितना माली का पौदे को बढ़ाने का कार्य है। मगर वास्तविक शिक्षा देना धीमा व इससे बहुत कठिन कार्य है।

शान्ति के हेतु अध्यापकों व स्कूलों के कार्य पर अधिक आशा रखने से बचना चाहिए जिसका एक कारण है। वास्तव में कोई भी स्कूल उस समाज से अधिक आगे नहीं बढ़ सकता जिसकी वह सेवा करता है। अगर लोग आदर्शवादिता से नयी संसार पद्धति का निर्माण बच्चों की शिक्षा द्वारा देखना चाहते हैं, तो वे अपने आपको धोखा देते हैं। स्थानीय सभ्यता के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का प्रतिनिधित्व स्कूल कर सकता है और अधिकतर करता भी है। सच्चाई, ईमानदारी और बराबरी के बर्ताव में स्कूलों को अपने समाज के स्तर से ऊपर होना चाहिए और

वे होते भी हैं। उनमें से कुछ तो लोगों के स्तर और मूल्यों को काफ़ी बढ़ाने में सफल होते हैं। मगर अध्यापक चाहे जितने भी प्रगतिशील हों, स्कूलों को उस समाज के उद्देश्यों की पूर्ति करनी चाहिए जिसकी वे सेवा करते हैं। यही एक कारण है कि शिक्षा सम्बन्धी प्रगति की चाल कई बार बहुत ही धीमी प्रतीत होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय समझ में अध्यापक किस प्रकार योगदान दे सकते हैं

हम कह चुके हैं कि अध्यापकों से यह आशा करना कि बालकों की शिक्षा के सुधार द्वारा वे एक नई दुनिया का निर्माण करेंगे, व्यर्थ और आशाहीन है। राष्ट्रों के बीच समझ और शान्ति को बढ़ाने के लिए वे क्या कर सकते हैं? हम अनुभव करते है कि इसका उत्तर पाँच शर्तों पर निर्भर करता है :

(१) सबसे पहली बात यह कि अध्यापक स्कूल के बाहर समझदार और शिक्षित वयस्कों के रूप में कार्य कर सकते हैं। इतिहास के इस बिन्दु पर संसार की आशा प्रौढ़ों पर आधारित है। अगले कुछ शोचनीय वर्षों में बालक नहीं बल्कि वयस्क महत्वपूर्ण राष्ट्रीय नीतियों का निर्माण करेंगे। बालक उत्सुकता से पूर्ण होते हैं, सीखने के लिए उत्कंठित और उद्यत। ये हमारे समाजों के वयस्क ही हैं जो अपनी आशंकाओं, पक्षपातों, सोचने के पुराने तरीकों के प्रयोग और सोचने से इनकार करके हमारे स्कूल के काम को बेकार करते और मानवता की उन्नति को रोकते हैं। यदि तीसरे महायुद्ध को रोकना है, तो मुख्य तात्कालिक शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्व बालक के क्षेत्र में नहीं वयस्क के क्षेत्र में है। ट्रेनिंग और जागरूकता में सर्वसाधारण से बढ़े हुए व्यक्तियों के रूप में अध्यापकों का काम है कि बालकों के अलावा वयस्कों के लिए भी समय निकालें और उन सभी संस्थाओं को पूर्ण सहयोग दें जो वयस्क समाज के मस्तिष्क को ज्ञान देती हैं और सद्विचारों को आन्दोलित करती हैं।

(२) अध्यापकों का दूसरा काम है बालकों के शिक्षक के रूप में अपना काम सुचारु रूप से करना। जब हमारे मस्तिष्क में अन्तर्राष्ट्रीय समझ की समस्या है, तो इसका अर्थ यह है कि हमें कई काम पहले से अच्छी तरह करने चाहिए। विशेष रूप से इसका अर्थ यह है कि सामाजिक अध्ययन को बहुत अच्छी तरह कराएँ।

अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स आफ़ सोशल रिकंस्ट्रक्शन' (सामाजिक पुनर्निर्माण के सिद्धान्त) में, बरट्रेन्ड रसल इतिहास की शिक्षा की पूर्णतया निन्दा करते हैं : 'प्रत्येक देश में इतिहास इस प्रकार सिखाया जाता है कि उस देश का गौरव बढ़े। बालक इसमें विश्वास करना सीखते हैं कि उनका देश हमेशा ठीक रहा है और

प्राय: जीता भी है, कि प्राय: सभी महापुरुष उनके देश में पैदा हुए हैं, और कि सभी दृष्टियों से उनका देश दूसरे देशों से बढ़ चढ़कर है. . .संसार के इतिहास के झूठे विचार जो भिन्न देशों में सिखाए जाते हैं ऐसे होते हैं जिनसे कलह बढ़ता है और संकीर्ण राष्ट्रीयता को जीवित रखने में सहायक होता है।'

यद्यपि यह आलोचना प्रथम महायुद्ध के पहले सर्वथा उपयुक्त थी, दोनों महायुद्धों के बीच की अवधि के लिए यह लागू नहीं होती। इस अवधि में अपने देश के अलावा अन्य दलों और राष्ट्रों के कार्यों का उल्लेख करने की अध्यापकों ने कोशिश की। उन्होंने बालकों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि वर्तमान सभ्यता किसी एक देश की प्रतिभा का नतीजा नहीं, बल्कि कई देशों के एकत्रित और सहयोगी प्रयत्नों का नतीजा है। दूसरे देशों और दूसरी जातियों के विषय में गलत धारणाओं को निकालने के लिए अध्यापकों ने भिन्न प्रकार के प्रयत्न किए हैं। मगर प्रत्यक्षत: उन्होंने पर्याप्त प्रयत्न नहीं किए, कम-से-कम उनको अधिक सफलता न मिल सकी। जनवरी, १९३९ के 'एजूकेशनल फोरम' में नार्मन ग्रे का एक लेख छपा जिसका शीर्षक था 'एक अध्यापक सोचने के लिए रुकता है।' ग्रे ने अध्यापन का काम आरम्भ किया तो अन्य कई उत्साहपूर्ण युवकों की भाँति उसमें विश्वास था कि राष्ट्रों के अन्दर और उनके आपसी सम्बन्धों में उपजे हुए भ्रमों की समस्याओं को मनुष्य हल कर सकते हैं—और इस का प्रधान साधन शिक्षा है। एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में बीस वर्ष तक पढ़ाने के बाद, उसका विश्वास बुरी तरह हिल उठा। "मैं मानवता के बारे में सोच रहा हूँ जो हमारी शिक्षा व अध्यापक का असली विषय है. . .मैं नए सिद्धान्तों और राजनीतिक पद्धतियों, युद्धों और युद्धों की अफ़वाहों, निर्दयता और घृणा और असहनशीलता के गौरवगान, पृथकत्व, असभ्यता, अज्ञान, पक्षपात, और गर्व के बारे में सोच रहा हूँ। मैं विश्वास करना चाहता हूँ कि हम अध्यापकों ने इस अंधेरे को प्रोत्साहन नहीं दिया, मगर इसे निरुत्साह करने के लिए भी हमने कुछ नहीं किया। हम, जिन्होंने हजारों को 'वार एण्ड पीस', 'अन्ना करनीना', और 'फ़ादर्स एण्ड सन्स' जैसी पुस्तकों का परिचय कराया है, जनता को यह सोचने से नहीं रोक सके कि सभी रूसी दाढ़ीवाले, बिना नहाए जंगली हैं। हमने उन्हें 'ला डिबाक्ल', 'वट प्राइस ग्लोरी' और 'आल क्वाइट आन दि वेस्टर्न फ्रंट' दिए हैं और उन्होंने कुछ नहीं सीखा। इन पुस्तकों को पढ़कर न उन्हें दुख हुआ है न उन्होंने सोचा है, न क्रोध आया है न कुछ कर गुजरने का भाव—क्योंकि उन्होंने समझा नहीं है। हमने उन्हें साहित्य सिखाया है, मगर मनुष्य को समझना नहीं सिखाया—न अपने आपको, न अपने पड़ोसियों को जो अब भी उनके लिए 'बाप' (अमरीका में विदेशी), 'लाल', 'यहूदी', 'केथलिक', 'विदेशी', 'न्यू डीलर्स', 'होबो', 'अधर्मी' हैं।"

निस्सन्देह सामाजिक अध्ययन पहले से अधिक प्रभावशाली तरीके से पढ़ाया जाना चाहिए। अध्यापकों को सीधा सोचना भी सिखाना चाहिए—ऐसी अच्छी तरह जैसे आज तक नहीं सिखाया गया। यह एक ऐसा काम है जिसे एच० एल० मेंकन ने असम्भव कह कर छोड़ दिया था। मेंकन ने लिखा था, 'अध्यापक से आशा की जाती है कि वह साधारण मनुष्यों को स्पष्टता और तार्किकता से सोचना सिखाएगा—और अगर कोई ऐसा काम है जो करने में स्वभाव से ही साधारण मनुष्य अयोग्य है—तो वह है स्पष्टता और तार्किकता से सोचना।' सो वह इस निर्णय पर पहुँचा कि अध्यापक के लिए यह काम करना असम्भव है।

मगर मेंकन के कथन के बावजूद अध्यापक इस दिशा में अधिक अच्छा काम कर रहे हैं और उन्हें करना चाहिए! वे अपने विद्यार्थियों को शिक्षा दे सकते हैं और उन्हें देनी भी चाहिए कि वे अपने आँखों व कानों का प्रयोग इतनी बुद्धिमत्ता से करें कि उन्हें सच्चाई और प्रचर का भेद, समझ और पक्षपात का अन्तर मालूम हो जाए। अगर वे कठिन प्रयत्न करें तो वे विद्यार्थियों में विधिवत् उपायों के प्रति श्रद्धा और शक्ति के स्थान पर विवेक के प्रयोग का विकास कर सकते हैं। कुटिल व्याख्यानों के छल और युक्ति, जिनसे मनुष्य के मस्तिष्क शोचनीय रूप से भटकते रहे हैं, उनकी समझ और उनसे रक्षा के साधन वे उपस्थित कर सकते हैं। हमारे स्कूलों में बहस के ढंगों का अधिक भरपूर और अच्छा प्रयोग किया जा सकता है।

(३) एक और करने योग्य प्रत्यक्ष कार्य है विज्ञान को पहले से अधिक अच्छी तरह पढ़ाना और उसके सामाजिक प्रभावों को समझाना। निस्सन्देह विज्ञान की शिक्षा अब अणु के विभाजन पर विशेष ध्यान देगी और उस निर्णय पर भी जो इसके शान्ति और युद्ध के उपयोग, जीवन को भरपूर करने और उसको नष्ट करने के विषय में मनुष्य को करना है।

(४) एक और बात जो प्रत्यक्ष है, वह यह कि हमारी उन संस्थाओं में जहाँ अध्यापकों को काम के लिए तैयार किया जाता है और स्कूलों में जहाँ उनका काम होता है, दोनों स्थानों पर हमें उन अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारियों के लिए जिनका काम शान्ति रखना है विद्यार्थियों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए। हमें याद आता है एक छोटा-सा अध्यापकों का कालेज जो इस 'शिविर' के स्थान से बहुत दूर है। वह एक ऐसे काम का ज्वलन्त उदाहरण है जिसे और बड़े पैमाने पर करना चाहिए। सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में यू० एन० के विभागों और एजेंसियों के उद्देश्यों और कार्यों पर विशेष जोर दिया जाता है। यूनेस्को के कार्य के कुछ अंशों पर कालेज के पत्र के हर अंक में एक या अधिक कालम दिए जाते हैं।

यू० एन० एसोसिएशन की स्थानीय शाखा विद्यार्थियों ने बनाई है, जिसका अर्थ यह है कि यू० एन० के सभी प्रकाशन अध्ययन व बहस के लिए प्राप्य हैं। इस शाखा ने लेक सक्सेस में स्थित यू० एन० सूचना विभाग का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है जिसके अनुसार यह यू० एन० सूचना का वितरण करेगी और यू० एन० के कार्य का प्रचार करेगी। इस प्रकार इस कालेज के भावी अध्यापकों को अन्तर्राष्ट्रीय समझ की उत्साहपूर्ण शिक्षा दी जाती है। भावी अध्यापक न केवल यू० एन० के विषय में बहुत सी जानकारी प्राप्त करते हैं, बल्कि उन्हें इस विषय में कुछ ठोस कार्य करने का अनुभव प्राप्त होता है। दिलचस्पी और प्रोत्साहन का विषय है कि इस कालेज के एक लेक्चरर ने सीवरिस में होनेवाले यूनेस्को 'शिविर' में भाग लिया था।

अभी तक हमने जो कुछ कहा है, वह यह कि स्कूलों व अध्यापकों का शान्ति के लिए कार्य अभी तक बहुत आशावादी नहीं रहा। मगर हमने इस बात पर भी जोर दिया है कि जो काम अध्यापक स्कूल के बाहर के प्रौढ़ समाज में और स्कूल के अन्दर विशेष विषय पढ़ाने में करता है, उसका भी कुछ महत्व है। जैसा पहले कहा जा चुका है, सामाजिक अध्ययन जैसे विषयों को हम विशेष महत्व देते हैं। हमारा विचार है कि इन विषयों को पढ़ाने वाले अध्यापकों का एक विशेष उत्तर-दायित्व है।

(५) अन्त में हम एक सुझाव देना चाहेंगे। वह यह कि बालक की वृद्धि और विकास की सही समझ और उस समझ का अध्यापकों द्वारा सही उपयोग—इन दोनों का अन्तर्राष्ट्रीय समझ के साथ गहरा सम्बन्ध है। राष्ट्रों के अन्दर और उनके आपसी सम्बन्ध में जो भिन्न प्रकार के भ्रम पैदा होते हैं, वे केवल बालकों की शिक्षा के विषय में उनकी वृद्धि व विकास की सही समझ के समावेश से दूर हो सकते हैं—ऐसा समझने का दम्भ हम नहीं करते। हमारा कहना तो केवल इतना है कि दलमें इकट्ठे रहकर समाज का रूप सुधारने की रीति को जाननेवाले पूर्ण विकसित व्यक्तियों के निर्माण पर जो है—उसका प्रभाव संसार-समाज बनाने के प्रयत्नों पर अवश्य पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव पैदा करने में राजनीतिक व आर्थिक प्रश्नों का कितना हाथ होता है, उसे हम स्वीकार करते हैं। मगर फिर भी हमें विश्वास है कि बहुत सच्चे अर्थों में 'युद्धों का आरम्भ मनुष्यों के मस्तिष्क में होता है' और युद्ध वह मानसिक विकृति है, जो उससे उत्पन्न होनेवाले मनोवैज्ञानिक रोगों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसी कारण सामाजिक व अन्तर्राष्ट्रीय जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात हम यह समझते है कि अध्यापक स्कूल के पाठचक्रमों को पढ़ाने के स्थान पर बालक के शरीर व मन के स्वस्थ विकास का अधिक ध्यान रखे।

अधिकतर स्थानों के अधिकतर स्कूल अब भी अच्छे मनुष्य बनाने में बहुत कम दिलचस्पी लेते हैं। उदाहरण के लिए, प्राथमिक स्कूल की अवधि में बालक की वृद्धि चार तरह की होती है—शारीरिक, मानसिक, भावना-विषयक और सामाजिक। इन चारों प्रकार की सफल वृद्धि को बढ़ावा देना ही प्राथमिक स्कूल का कर्त्तव्य है। औसत स्कूल की यह समालोचना काफ़ी युक्तिसंगत है कि तथ्यों और यन्त्र सम्बन्धी प्रवीणताओं में उलझे रहने के कारण स्कूल मानसिक विकास पर बहुत ज्यादा जोर देता है और शारीरिक, भावना-विषयक और सामाजिक आवश्यकताओं पर अपर्याप्त ध्यान देता है।

कहा जा सकता है कि स्कूल कम-से-कम मानसिक विकास पर तो ध्यान देते ही हैं। मानसिक ट्रेनिंग के लिए अध्यापक आवश्यकता से अधिक समय देते हैं, यह सच है। मगर वे अध्यापक जिनकी सारी दिलचस्पी प्रत्येक बालक व बालक-समूह पर केन्द्रित न होकर केवल तथ्यों और प्रवीणताओं पर केन्द्रित रहती है—इस सीमित क्षेत्र में भी उन्हें असफलता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए बहुत से स्कूलों में गणित को जो महत्ता दी जाती है, उसे ही लीजिए। कैसे-कैसे पागलपन के उदाहरण बच्चों के सामने रखे जाते हैं जिनमें बालक की वृद्धि की अवस्था का तनिक भी ध्यान नहीं रखा जाता। तथ्य एकत्रित करने को लीजिए, जिसे अधिकतर सामाजिक अध्ययनों का नाम दिया जाता है। समय और शक्ति के ह्रास और उससे उत्पन्न निराशा को लीजिए जो इसलिए होती है कि अध्यापक यह नहीं जानते कि कब बालक सीखने के लिए तैयार है या इसलिए कि समय पर वे अपने ज्ञान का उपयोग नहीं कर पाते। बालक की वृद्धि और विकास के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाने में असफल रहने के कारण प्राथमिक स्कूल अब भी केवल अज्ञानता को निकालने की एक संस्था मात्र है। वह ऐसा स्थान नहीं जहाँ प्रसन्नता व स्वाभाविकता से उपर्युक्त चार दिशाओं में बालकों का विकास हो सके।

ऐसे व्यक्तियों के निर्माण के विषय में, जो दूसरों के साथ रहना जानते हैं, बहुत कुछ किया जा सकता यदि हम बालकों के विकास के विषय में जो जानकारी प्राप्त है, उस पर अधिक ध्यान दें। इससे हम प्रत्येक बालक के अद्वितीय गुण और उसके विकास के क्रम को भली भाँति जान जाएँगे। इससे हम इस सिद्धान्त के अभ्यासिक रूप को स्वीकार कर सकेंगे कि मानवीय विकास की ऐसी अवस्थाएँ हैं जो आसानी से पहचानी जा सकती हैं। इसका अर्थ यह भी होगा कि वृद्धि और विकास की प्रत्येक अवस्था—मानसिक, शारीरिक, भावना-विषयक, सामाजिक—वृद्धि के पूरे वृत्त का एक भाग है, इसे हम स्वीकार करते हैं। ऐसे सिद्धान्तों के मानने और उन पर कार्य करने से पूर्ण-विकसित व्यक्तित्ववाले

युवक व युवतियों का निर्माण होगा जो दूसरों के साथ भली भाँति रहने की बहुमूल्य कला में अधिक निपुण होंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय समझ में यदि आगे बढ़ना है, तो बहुत-सी समस्याएँ सुलझानी होंगी। हमारा विचार है कि जिन क्षेत्रों में अनुसन्धान आवश्यक है, बालक-विकास के विशेषज्ञ उनमें बहुत कुछ मदद दे सकते हैं।

(६) किस समय महत्वपूर्ण विचार धारण किए जा सकते हैं? यह निर्धारित करने के लिए परिपक्वता की भिन्न अवस्थाओं के शिक्षार्थियों की दिलचस्पियों और आवश्यकताओं का अनुसन्धान आवश्यक है। यह अनुसन्धान तभी सफल हो सकता है जब बालक-विकास के प्रति दृष्टिकोण स्वस्थ और बुद्धिमत्तापूर्ण हो। मनुष्य के विचार और मूल्य किस प्रकार निर्धारित होते हैं और कहाँ उनकी उत्पत्ति होती है, इसे जानने के लिए भी ऐसे ही दृष्टिकोण के अनुसन्धान की आवश्यकता है।

कई अनुसन्धानों में न केवल अन्तर्राष्ट्रीय समझ से सम्बन्धित सुलझे विचारों व अवस्थाओं की आवश्यकता होती है बल्कि उन विचारों व अवस्थाओं पर चलने की तत्परता और योग्यता की भी जरूरत होती है। उपर्युक्त दृष्टिकोण ऐसे कार्यों में भी अनिवार्य होता है।

अनुसन्धान का एक सम्बन्धित क्षेत्र है उन सामाजिक योग्यताओं का विकास करना जो योग्यताएँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में ही नहीं, एक दल या संस्कृति के आन्तरिक सम्बन्धों में भी आवश्यक हैं। यद्यपि कुछ दिलचस्प आरम्भिक कार्य हो चुका है, फिर भी अधिक अनुसन्धान की बहुत आवश्यकता है। यह अनुसन्धान कक्षा के अध्यापकों और अनुसन्धान-विशेषज्ञों के सहयोगी प्रयत्नों से होगा और इस बात की खोज करेगा कि दल-योजनाओं में कौन-सी योग्यताएँ आवश्यक हैं और उनके निर्माण के लिए उपयुक्त पद्धतियाँ कौन-सी हैं। ऐसी योग्यताओं की सूची में ये भी सम्मिलित होंगी :

(अ) किसी दल की सम्मति, योग्यता और व्यक्तित्व के भेदों का मूल्यांकन करने और उनका रचनात्मक रीति से उपयोग करने की योग्यता।

(आ) व्यक्तिगत मैत्री-सम्बन्ध को बिगाड़े बिना दूसरे व्यक्ति की राय से असहमत होने की योग्यता।

(इ) विवादात्मक विषय पर बिना बहुमत-अल्पमत का निर्णय लिए एकमत पर पहुँचने की योग्यता।

(ई) व्यक्तिगत उद्देश्यों और आवश्यकताओं का दल के अन्य सदस्यों के उद्देश्यों और आवश्यकताओं के साथ समाधान कराने की योग्यता।

(उ) उचित समय पर नेता या अनुचर का कार्य निभाने की योग्यता।

(ऊ) विशेष दशा और उसके लिए आवश्यक नेतृत्व के ज्ञान के आधार पर दल के नेता चुनने की योग्यता।

(ए) उपयुक्त निर्णय पर पहुँचने तक बहस जारी रखने और फिर दल को बातों से कार्य की ओर ले जाने की योग्यता।

(ऐ) साझे की समस्याओं पर इकट्ठा आक्रमण करने के लिए अन्य दल से मिल कर एक दल की तरह कार्य करने की योग्यता।

हमने निर्णय किया कि किसी भी एक सभ्यता में पैदा हुए भ्रमों का निवारण करने के लिए ये निपुणताएँ स्पष्ट लाभ की हैं। भिन्न सभ्यताओं के भ्रमों को मिटाने के लिए भी ये उतने ही काम की हैं। हमारा विचार है कि ये सामाजिक निपुणताएँ ऐसी स्कूल-पद्धति में विकसित होंगी जिसमें व्यक्ति के पूर्ण विकास पर जोर दिया जाता है—केवल ज्ञान और यन्त्र सम्बन्धी निपुणताएँ एकत्रित करने पर नहीं।

यह दावा नहीं है कि ऐसी निपुणताओं के विकास में योगदान वही लोग देंगे जो मानव-विकास को सही दृष्टि से देखते हैं। मानवीय सम्बन्धों की कठिन समस्याओं की यथार्थ पूर्ति वही विशेषज्ञ करेंगे, ऐसी बात नहीं है। वे लोग जब समाज-शास्त्रियों, मनुष्य-शरीर-रचना-शास्त्रियों, इतिहासज्ञों, भूगोल-शास्त्रियों, अर्थ-शास्त्रियों और अन्य समाज-शास्त्रों के विशेषज्ञों के साथ मिलकर इस विषय पर विचार करेंगे, तभी कुछ विशेष फल निकल सकेगा। दल १ का दावा केवल यह है कि बालक की वृद्धि व विकास की अवस्थाओं को समझनेवाले लोग अपनी एक आवश्यक देन दे सकते हैं।

४. अध्यापक-शिक्षा की कुछ प्रवृत्तियाँ

शिविर में भाग लेनेवाले बहुत से व्यक्तियों को एक आवश्यकता महसूस हुई। वह यह कि संसार के अन्य देशों में अध्यापक की ट्रेनिंग के विषय में जो विचार और प्रचलन बहुत मूल्यवान सिद्ध हुए हैं, वे अपने साथ वापस ले जाएँ। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए दल १ के सदस्यों को कहा गया कि वे अपने देशों में होनेवाली नवीन धाराओं पर नोट लिखकर उपस्थित करें। 'दि इम्प्रूवमेंट आफ़ टीचर एजूकेशन'* (अध्यापक-शिक्षा में सुधार) नामक रिपोर्ट के परिणामों सहित इन नोटों पर पूरे दल ने बहस की, और इस बहस में जो प्रवत्तियाँ सबसे महत्वपूर्ण प्रतीत हुईं, वे नीचे दी जा रही हैं। यह बात स्पष्ट करनी

* इम्प्रूवमेंट आफ़ टीचर एजूकेशन—अमरीकन कौंसिल आन एजूकेशन के अंतर्गत टीचर एजूकेशन पर बनाए गए कमीशन की अंतिम रिपोर्ट।

आवश्यक है कि पूरे विषय पर व्यवस्थापूर्वक विचार करने का प्रयत्न नहीं किया गया। न ही निम्नलिखित सभी बातों का मूल्यांकन ही किया गया। फिर भी आशा है कि जो अध्यापक शिक्षा की नई प्रवत्तियों में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें यह संक्षिप्त रिपोर्ट लाभदायक सूचना देगी।

अध्यापक-शिक्षा में नए विकास

(१) विषय-अध्यापन से हटकर बालक की आवश्यकताओं पर अधिक जोर

(अ) सामान्य शिक्षा संबंधी मनोविज्ञान के स्थान पर बालक की वृद्धि और विकास पर ज़ोर।

(आ) स्कूल के बाहर बालकों से अधिक सम्पर्क और उनका निरीक्षण—खेल के केन्द्रों में, बालकों के क्लबों में, मैदानों में, खाने के स्थानों में और सड़कों पर।

(इ) मिली-जुली योजना पर कई विभागों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कालेज के पाठ्यक्रम में सुधार।

(ई) पाठ्यक्रम के विषयों की गिनती में भारी कमी।

(उ) योजनाओं पर विद्यार्थियों को काम करने का अवकाश देने के लिए अधिक 'खुला समय'।

(ऊ) काम के घंटों में विद्यार्थियों को अधिक आज़ादी।

(ए) विषय-विशेष पर व्यवसायी शिक्षा के स्थान पर सामान्य शिक्षा के लिए अधिक समय देना।

(ऐ) कक्षा चढ़ाने के लिए नियमबद्ध वर्ष के अंत की परीक्षाओं के स्थान पर जमा पद्धति को अपनाने की मनोवृत्ति।

(२) सक्रियता-पद्धतियों का अधिक जोर

(अ) कोर्स और अध्ययन की विधियों को निर्धारित करने में विद्यार्थियों का अधिक योग।

(आ) कार्य के प्रत्येक पहलू का (जिसमें अध्यापकों की निपुणता भी सम्मिलित है) मूल्यांकन और उसकी आलोचना करने का विद्यार्थियों को अधिक अवसर।

(इ) विषयों के चुनाव में अधिक स्वतंत्रता।

(ई) क्रिया-योजनाओं में प्रयोग करने के लिए स्कूल के वर्ष के अंतिम कुछ सप्ताहों का उपयोग करना। ये क्रियाएँ अधिकतर विद्यार्थी ही करेंगे।

(उ) कार्य के समय का कुछ भाग शिक्षा संबंधी विद्यार्थी क्लबों के लिए देना।

(ऊ) ऊपर से नियंत्रण को छोड़कर एक ऐसी प्रवृत्ति को ग्रहण करना जिससे अध्यापकों और विद्यार्थियों में सहयोग से कार्य हो।

(३) प्रत्यक्ष अनुभव में वृद्धि

(अ) ऐसी संस्थाओं को देखने जाना जहाँ नई प्रणालियों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया जा सके।

(आ) प्राकृतिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए देहातों का भ्रमण अधिक करना।

(इ) अन्य प्रांतों व देशों के पर्यटन की व्यवस्था करना।

(ई) नोट लिखने की अपेक्षा वस्तुओं के नमूनों का संग्रह करना।

(उ) शिक्षा व समाज-संबंधी ध्येयों के लिए कैम्पों का अधिक उपयोग करना।

(४) सामाजिक समझ व समाज-सेवा पर अधिक जोर

(अ) स्थानीय वातावरण, सामाजिक अवस्थाओं और संस्कृति का समक्ष व अधिक अध्ययन।

(आ) प्रौढ़ शिक्षा, नवयुवक संस्थाओं, प्रथमोपचार, शिल्प-शिक्षा, अज्ञानता निवारण, स्वास्थ्य संबंधी सूचना का प्रसार—इस प्रकार की सामूहिक समाज-सेवाओं में भाग लेने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना।

(इ) कालेज-सक्रियता के रूप में युवक-नेता बनाने के लिए ट्रेनिंग देना।

(ई) बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों को व्यवसाय-विषयक सलाह देने और बुद्धिमत्ता नापने की पद्धतियों के बारे में शिक्षा देना।

(५) रचनात्मकता को प्रोत्साहन देना

(अ) कालेज के पाठ्यक्रम में संगीत, कला, शिल्प, अभिनय और शारीरिक शिक्षा को अधिक महत्ता देना।

(आ) ऐसी सुविधाएँ देने का प्रबंध करना कि इन सक्रियताओं में सभी विद्यार्थी भाग ले सकें।

(इ) बुनियादी शिक्षा पूरी हो जाने के बाद इन विषयों में विशेष अध्ययन की सुविधा।

(ई) भावी अध्यापक के पूर्ण विकास पर ज़ोर—जिससे उसका व्यक्तित्व गठा हुआ हो।

(६) अध्यापकों के कालेज के बाहर के साधनों का अधिक उपयोग

(अ) निश्चित क्षेत्रों में विश्वविद्यालय की सुविधाओं का प्रयोग। उदाहरण के लिए शरीर और कायिकी के अध्ययन, ग्रंथालयों के उपयोगों की अदला-बदली।

(आ) एक भाषण या भाषणों के एक क्रम के लिए बाहर के भाषणकर्त्ताओं का अधिक प्रयोग।

(इ) ढीठ व पिछड़े बच्चों को पढ़ाने के लिए बाल-सुधार-केन्द्रों से सहयोग।

(ई) अध्यापकों के कालेजों में आने के लिए सांस्कृतिक समूहों को अधिक मात्रा में निमंत्रण—वाद्यवृंद समूह, नाटक-कम्पनियाँ, प्रदर्शन समूह इत्यादि।

(उ) कालेज के प्रदर्शन देनेवाले समूहों, नाटकों, डिबेट करनेवाली टीमों, इत्यादि को बाहर के दर्शकों के पास ले जाना।

(ऊ) कालेज के नाटकों इत्यादि को देखने के लिए हाई स्कूलों के विद्यार्थियों को निमंत्रण।

(ए) स्कूल के तरीकों और नई योजनाओं पर बहस करने के लिए आसपास के स्कूलों के अध्यापकों की नियमित सभा करना।

(७) काम की अवधि में अध्यापकों की और अधिक ट्रेनिंग

(अ) काम में लगे अध्यापकों की और अधिक ट्रेनिंग के लिए कालेजों का बढ़ता हुआ योगदान।

(आ) अमेरिका 'कारखाना' पद्धति का बढ़ता हुआ आंदोलन, जिसमें काम में लगे अध्यापक शिक्षा-संबंधी अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए इकट्ठे मिल कर बैठते हैं।

(इ) 'काम की अवधि में' दिए जानेवाले पाठ्यक्रम और सक्रियताएँ, नियमित स्कूल-कार्य के रूप में।

(ई) 'काम की अवधि में' ट्रेनिंग-योजनाओं के लिए पर्याप्त धन का प्रबंध।

(उ) अमेरिका में अनियमित प्रांत-परिषदों का विकास। इन परिषदों में शिक्षा के प्रत्येक विभाग के प्रतिनिधि होते हैं और ये परिषद शिक्षा संबंधी योजनाओं के लिए प्रचार व एकीकरण के कार्य के केन्द्र होते हैं।

(ऊ) काम करनेवाले अध्यापकों के लिए पाठ्यक्रमों का प्रबंध करने के लिए पूरे समय के अफसरों की नियुक्ति।

(ए) लाभ से छूटे हुए लोगों और सुदूर स्थानों में रहनेवाले विद्यार्थियों के लिए डाक के पाठ्यक्रमों का विकास।

उपसंहार

यद्यपि उपर्युक्त विकास की रूपरेखाओं में से कोई भी ऐसी नहीं है जो विशेष नई अथवा क्रांतिकारी हो, फिर भी वे यह अवश्य व्यक्त करती हैं कि अध्यापक की शिक्षा में उत्तरोत्तर वृद्धि और परिवर्तन हो रहे हैं। पुरानी, शास्त्रीय ढंग की, विषयों से लदी ट्रेनिंग तेज़ी से समाप्त हो रही है और उसका स्थान ऐसी ट्रेनिंग ले रही है जिसका ध्येय अध्यापक का व्यक्तिगत व व्यावसायिक विकास है जो उसे प्रभावकारी नागरिक बना सकता है।

परिशिष्ट क : एक 'समाज-वर्ग'

'समाज-वर्ग' कैसे बनता है और उसकी व्याख्या किस प्रकार करते हैं, इसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है। यह 'हेल्पिंग टीचर्स अंडरस्टैंड चिल्ड्रन' नामक पुस्तक में से लिया गया है, जो सन् १९४५ में अमेरिकन काउंसिल आन एजूकेशन ने प्रकाशित की थी।

कुमारी डी० पंद्रह बच्चों की एक कक्षा को पढ़ाती थी जिनकी आयु ९ से ११ वर्ष की थी। एक दिन पढ़ाने के बाद उसने बच्चों से कहा—'अभी हम तीन छोटे मित्रों के विषय में पढ़ रहे थे। मैं यह जानना चाहती हूँ कि अपनी कक्षा में से सहेलियाँ बनाने के लिए तुम किनको चुनोगी। तुम्हारे लिए योजनाएँ बनाने में इससे मुझे सहायता मिलेगी। क्या तुम एक कागज़ पर ऐसे तीन नाम लिखोगी जिन्हें तुम चुनना चाहोगी? तीन नामों से अधिक मत लिखना, चाहे तुम्हारी तीन से अधिक सहेलियाँ हों।'

बच्चों ने नाम लिख लिए तो मिस डी० ने कहा—'अब अगर कोई ऐसी भी लड़कियाँ हैं जिन्हें तुम सहेलियाँ नहीं बनाना चाहतीं, तो उनके नाम भी लिख दो। शायद ऐसी एक भी लड़की न हो, या तुम केवल एक नाम लिखना चाहोगी, या बहुत से ऐसे नाम होंगे। मगर कृपया तीन से अधिक मत लिखना।'

इस माँग पर किसी भी बच्चे को आश्चर्य या उलझन महसूस नहीं हुई। मिस डी० का स्पष्टीकरण उन्होंने बिलकुल स्वाभाविक रीति से मान लिया कि उनके उत्तरों से योजनाएं बनाने में अध्यापिका को मदद मिलेगी। कभी भी इस सक्रियता को जाँच का पद देकर नहीं बताया गया। न ही उनके उत्तरों के विषय में उनके साथ बहस की गई, न उनके सम्मुख उनका उल्लेख किया गया।

पाठ के बाद मिस डी० ने प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक कार्ड बनाया। ऊपर के हिस्से में उसने बच्चे का नाम लिखा—जैसे, एमिली। फिर बायीं ओर एक कालम में उसने वे नाम लिखें जिन्हें एमिली ने सहेलियों के रूप में चुना था।

इनके नीचे वे नाम लिखे जिन्हें एमिली ने अस्वीकार किया था। दायीं ओर एक कालम में मिस डी० ने उन लड़कियों के नाम लिखे जिन्होंने एमिली को सहेली के रूप में चुना था और उनके नीचे उनके नाम जिन्होंने उसे अस्वीकार किया था। इस प्रकार बच्चों के उत्तर कार्डों पर उतारने के बाद मिस डी० ने कार्ड मेज पर बिछा लिए और उन नामों की खोज की जो सबसे अधिक बार चुने गए थे। कई आरंभिक आकार बनाने के बाद उसने निम्नलिखित वर्ग बनाया—अर्थात् 'सामाजिक वर्ग'—जिसका आधार उसके पूछे प्रश्नों का उत्तर था :

इस वर्ग ने अध्यापिका को सोचने का काफ़ी मसाला दिया। उसे पता चला कि उसकी कक्षा की पंद्रह लड़कियों के दो दल हैं। बड़े दल में छः लड़कियां हैं—एमिली, जेन, लिनोरा, केदोलिन, रोडा और लुईसे। पारस्परिक चुनाव से ये लड़कियाँ एक उप-दल में बँध गई जिसका नाम अध्यापिका ने रखा अंतर-दल **क**। दूसरे छोटे दल में, जिसका नाम अंतर-दल **ख** रखा गया, एगनेस, लर्लाइन, पेट्रीशिया और ऐन थीं। प्रत्येक अंतर-दल में एक विशेष केन्द्रीय लड़की थी जिसे अंतर-दल के प्रत्येक सदस्य ने चुना था। अंतर-दल **क** में यह लड़की एमिली थी, अंतर-दल **ख** में एगनेस। सर्वश्रेष्ठ मित्र के रूप में एमिली को नौ अन्य लड़कियों ने चुना था और एमिली ने खुद चार को चुना था (स्पष्ट था कि दिए गए तीन चुनावों में वह सीमित नहीं रह सकती थी)। एगनेस को सात ने चुना था। इन दोनों की तरह और कोई अन्य लड़की नहीं चुनी गई। दोनों अंतर-दल परस्पर में पृथक नहीं थे। इसके विपरीत इस बात के काफी प्रमाण मौजूद थे कि दोनों अंतर-दल एक दूसरे पर बहुत प्रभाव डालते

थे। उदाहरणार्थ अंतर-दल **क** की लड़की ऐन को अंतर-दल **ख** की लिनोरा और एमिली ने चुना था। एमिली को भी अंतर-दल **ख** की पेट्रीशिया और लर्लाइन ने चुना था। दूसरी ओर अंतर-दल **ख** की केन्द्रीय लड़की एगनेस को अंतर-दल **क** की तीन मुख्य लड़कियों ने अस्वीकार किया था—एमिली, रोडा और लिनोरा ने।

एमिली की लोकप्रियता मिस डी० के लिए बहुत आश्चर्यजनक बात थी। एमिली की भीरुता और कक्षा के काम में उसकी कठिनाइयों में मिस डी० इतनी उलझी हुई थी कि इस दल में लड़की का जो प्रमुख स्थान था उस पर उसने दृष्टि न डाली थी।

परिशिष्ट ख : अध्यापकों के अध्ययन के विषय के रूप में बालक की वृद्धि और विकास

मिस डी० ई० एम० गार्डनर का एक भाषण

यूनिवर्सिटी आफ़ लंदन इंस्टीटयूट आफ़ एजूकेशन के
बाल-विकास विभाग की अध्यक्ष

ट्रेनिंग लेते हुए अध्यापक के लिए शायद अध्ययन का सबसे महत्वपूर्ण विषय बालकों का स्वभाव है। कोई भी व्यक्ति अपने विद्यार्थियों के स्वभाव को समझे बिना उन्हें पूर्ण अर्थों में शिक्षा नहीं दे सकता। शिक्षा की सफलता के लिए यह जरूरी है कि बालकों के विकास की भिन्न अवस्थाओं की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर यह शिक्षा आधारित हो।

इसलिए अध्यापन के ढंगों के अध्ययन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बाल-मनोविज्ञान का अध्ययन है। सच तो यह है कि अध्यापन के ढंगों का अध्ययन तभी उपयोगी सिद्ध होगा जब यह समझ आ जाएगी कि बालक विशेष रीतियों से अधिक अच्छा क्यों सीखते हैं। इसके साथ ही बालकों के अध्ययन से हम अपने विषय में भी बहुत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

एक ऐसा उदाहरण लीजिए जो इस 'शिविर' के सदस्यों के लिए विशेष रुचि का है। अगर एक अध्यापक को बालकों की आक्रमणकारी प्रवृत्तियों के साथ समझदारी से बरतना है, तो यह बहुत आवश्यक है कि वह अपने आक्रमणकारी भावों को स्वीकार करे और समझे। साथ ही वह यह भी समझे कि अनिवार्य रूप से कभी न कभी सभी बच्चे क्रोधित व द्वेषपूर्ण होंगे। बालक के साथ बुद्धिमत्ता से बरतना सदा आसान होता है जब हम उसके व्यवहार से न तो चौंकते हैं और न स्तंभित होते हैं। तब हम उसके भावों की शक्ति और

अविलम्बिता के साथ सहानुभूति रख सकते हैं और उन गहरी और शक्तिमान आवश्यकताओं को समझ सकते हैं जिन्होंने उस व्यवहार को उत्पन्न किया है। युद्ध के दिनों में माता-पिता से बिछुड़े बालकों के व्यवहार की जटिल समस्याओं ने युवा अध्यापकों को सोच में डाल दिया। वे कई बार यह समझने में असमर्थ रहे कि उनके प्रति दर्शाई हुई प्रतिद्वंद्विता बालक के उस अभाव का नतीजा है जो माता-पिता की संयत व सुरक्षित उपस्थिति के न होने से उसमें पैदा होता है। उन की प्रवृत्ति अपने आपको दोषी ठहराने की होती कि वे बालकों का सही नियंत्रण नहीं कर पाते, और इस आत्म-दोष से कई बार बालकों के प्रति क्रोध का भाव उत्पन्न हो जाता। इस बात की समझ युवा अध्यापक के लिए बहुत सहायक सिद्ध होती है कि बालकों में द्वेष के चिह्नों का प्रकट होना बालक की कठिनाइयों का सूचक है—अध्यापक के प्रति निहित घृणा का सूचक नहीं है।

छोटे बच्चों का अध्ययन अध्यापक के लिए विशेषकर आवश्यक है क्योंकि उन नींवों को जिन पर अवस्थाएँ आधारित हैं, समझे बिना बड़े बालकों को समझना असंभव है। दबाव के क्षणों में सभी बालक छोटे बच्चों की तरह व्यवहार करते हैं। छोटे बालकों के अध्यापक के लिए शिशुओं व छोटे बालकों के अध्ययन पर जोर देना अनावश्यक नहीं। इसका लाभ स्पष्ट है।

बाल-विकास का अध्ययन अपने आप में बहुत दिलचस्प विषय है और विद्यार्थियों के लिए ज्ञान का एक नवीन क्षेत्र खोल देता है। विद्यार्थी जब कालेज में आते हैं तो उनमें से कई स्कूली विषयों से ऊबे होते हैं। नए अध्ययन की ताजगी उनके लिए स्फूर्तिदायक होती है। जैसे जैसे वे बालकों के अध्ययन में गहरे पहुँचते जाते हैं, उन्हें अपने कार्य में नए मूल्यों का ज्ञान होता है और उनमें उत्साह उत्पन्न होता है कि वे अपने आप सोचें और अनुसंधान करें।

व्यावहारिक आस्थाएँ

मेरा विश्वास है कि इस दर्जे पर मनोविज्ञान की शिक्षा देना पूर्ण रूप से संतोषजनक नहीं हो सकता, जब तक कि विद्यार्थी व व्याख्यान-कर्ता हमेशा बच्चों के सम्पर्क में न रहें। इस प्रकार 'बालक' के विचार को सामने न रखकर असली बालकों के उदाहरण दिए जा सकते हैं, जिन्हें वे सब जानते हैं। इन बच्चों की समस्याओं और विशेषताओं पर बहस हो सकती है और एक ही आयु के भिन्न बालकों के भिन्न व्यक्तित्वों को समझा भी जा सकता है। इस प्रयोजन के लिए आदर्श एक ऐसा खेल-केन्द्र है जहाँ पर्याप्त विद्यार्थी-सहायक प्राप्य हों जो प्रत्येक बालक को समय दे सकें। मनोविज्ञान के अध्ययन को स्पष्ट करने के लिए स्कूल उपयुक्त स्थान नहीं है—जब तक कि वह स्कूल बच्चों को पर्याप्त

स्वतंत्रता न दे। अध्यापक को बच्चे तब देखने चाहिए जब वे स्वाभाविक दशा में हों। बाल-सुधार-केन्द्र का खेल-घर बाद के दर्जे में उपयोगी सिद्ध हो सकता है, मगर आरंभ में विद्यार्थियों को सामान्य बालकों की आवश्यकता है—और विशेष कठिनाइयों में फँसे बालकों की भी।

मेरा विश्वास है कि पहली शिक्षा-अवधि में मनोविज्ञान के अध्ययन का पूरा समय जीते-जागते बच्चों को देखने और उन पर बहस करने में लगाना लाभकर सिद्ध होगा। बहस के विषयों का क्रम कुछ असंबद्ध होगा, मगर विद्यार्थी वैज्ञानिक रीति की खोज की मनोवृत्ति को अपनाएँगे। यह निरीक्षण बाद में किताबों में लिखी बातों को निर्विवाद रूप से न मानने में भी सहायक सिद्ध होगा।

निम्नलिखित निरीक्षण सभी उपयोगी रहे हैं और ट्रेनिंग कालेज के कोर्स में मैंने जगह जगह इनके लिए स्थान बनाया है :

(१) शुद्ध अनियमित बहस जो खेल-केन्द्र के कार्य-काल के बाद आरंभ हो सकती है।

(२) विद्यार्थियों से कहना कि उनकी देखरेख के बालकों के व्यवहार में जो विशेषताएँ और जटिलताएँ हैं—उन्हें वे लिख लें। बालकों के कथन, इत्यादि को भी लिखें।

(३) एक निरीक्षण अवधि में एक ही बालक का नियमित लेखा-जोखा।

(४) विशेष उद्देश्य को सम्मुख रखकर एक ही आयु के बच्चों की विशेषताओं का निरीक्षण करना। उदाहरणार्थ, बड़ों के साथ संबंध, दूसरे बच्चों के साथ संबंध, झगड़ों का कारण, विशेष रुचियाँ, ध्यान देने की औसत अवधि।

(५) (कोर्स की अंतिम अवधि में) सरल अनुसंधान के अभ्यास जैसे गुड्इनफ़ और एंडरसन की पुस्तक 'एक्सपेरिमेंटल चाइल्ड स्टडी' में दिए गए हैं। खेल में स्पष्ट हुई दिलचस्पियों पर समय के चुनाव को मैंने विशेषकर उपयोगी पाया। ट्रेनिंग कालेज के एक व्याख्यानकर्ता ने, जिसने बहुत नियमबद्ध स्कूलों को देखा था और खेल-केन्द्रों को बिलकुल नहीं देखा था, यह देखने में कि कब ध्यान नहीं दिया जाता, बहुत लाभकारी काम किया। विद्यार्थियों को पता चला कि नियमबद्ध ढंगों पर चलने से कितना समय बर्बाद होता है। खेल के मैदान और कक्षा के व्यवहारों का तुलनात्मक अध्ययन भी उनके लिए बहुत शिक्षाप्रद सिद्ध हुआ।

मनोविज्ञान का नियमित अध्ययन

शिशु काल से किशोरावस्था तक के विकास-संबंधी मनोविज्ञान के अध्ययन पर एक वर्ष लगाना मुझे लाभकारी प्रतीत हुआ है। शिशुओं के अध्यापकों के

लिए सात से कम आयु के बच्चों के अध्ययन पर अधिक समय दिया जाना चाहिए, छोटे बच्चों के अध्यापक के लिए सात से ग्यारह वर्ष के बच्चों पर, और अध्यापकों के लिए ग्यारह वर्ष से अधिक आयु के बच्चों पर।

नर्सरी स्कूल के अध्यापक के लिए भी किशोरावस्था का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि (क) अध्यापक का भविष्य की ओर देखना और शिक्षा को एक इकाई के रूप में देखना लाभदायक है, (ख) छोटे बच्चों और किशोरों की मनोवृत्तियों में काफ़ी समानता होती है, (ग) नर्सरी स्कूल के अध्यापकों को अक्सर किशोर-सहायकों से काम लेना पड़ता है, और (घ) किशोरों का अध्ययन अक्सर विद्यार्थियों की अपनी समस्याएँ सुलझाने में सहायक सिद्ध होता है और उन्हें ढाँढस बँधाता है कि उनकी अपनी कठिनाइयाँ अपूर्व नहीं हैं।

विद्यार्थियों को चाहिए कि वे अपने मनोविज्ञान के विषय में अंतर्दृष्टि रखें। मगर मेरा विचार है कि इस दर्जे पर आवश्यक है कि बच्चों के अध्ययन द्वारा ही इस विषय को सीखा जाए। इससे विद्यार्थी आत्म-बोध के शिकार नहीं होते और न ही आवश्यकता से अधिक अंतर-मनन में डूबते हैं। देखना, कल्पना करना, सीखना, याद रखना इत्यादि मानसिक क्रियाएँ सिखलाने का एक उपाय प्रयोग का भी है। बुद्धि और बुद्धि परखने के उपायों का अध्ययन उपयोगी है। भावना-संबंधी आवश्यकताओं का अध्ययन भी होना चाहिए। भय और क्रोध, जैसे विषयों पर विद्यार्थियों से बहस करना सहायक होता है—और यौन का विषय भी इस बहस में आ सकता है। स्वाभाविक प्रवृत्तियों के विषय में पुराने युग के विचार और उनकी कमजोरियाँ भी विद्यार्थियों को बतानी चाहिए। मनोविज्ञान की भिन्न वर्तमान विचार-धाराएँ, बाल सुधार के क्षेत्र में नए कार्य, और पिछड़े हुए व कठिन बालकों की विशेष आवश्यकताएँ—ये सब विषय भी पढ़ाने चाहिए।

व्याख्यान-पद्धति का जरूरत से अधिक उपयोग नहीं करना चाहिए। बहस काफ़ी होनी चाहिए। कई लाभकारी विषय इस रीति से शायद छूट जाएँ, मगर पाठ्यक्रम के पहले भाग को जल्दी जल्दी समाप्त करने की जगह मैं इसे अधिक पसंद करूँगी।

ट्रेनिंग कालेज आरंभ के अतिरिक्त और अधिक कार्य करने की आशा नहीं कर सकता। अगर यह कार्य सफल रहे तो अध्यापक एक ऐसे अध्ययन-पथ पर चल पड़ेगा जो जीवन भर समाप्त न होगा।

सामाजिक समझ के लिए अध्यापकों को शिक्षा देना

दल २

श्री जे० एस० विली (फ्रांस)
श्री एल्बर्ट चैम्पियन (फ्रांस)
श्री टामस सी० हर्नेडन (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
श्री क्रिस्टोफ़र जेमसन (इंगलैंड)
श्री ए० के० एच० किनानी (सीरिया)
श्री विर्जर माइक्सवोल (नार्वे)
श्रीमती लामिया ओसाय (तुर्की)
श्री जी० डब्ल्यू० पार्किन (न्यूजीलैंड)
श्री लारेन्ट पावली (स्विट्जरलैंड)
श्री एंड्र्यू एफ० स्किनर (स्काटलैंड)
श्री टानीमो सोलारू (नाइगेरिया)
श्री डब्ल्यू० ए० स्टीव्स (केनाडा)
श्रीमती विटोरिया टेडेशी (इटली)
श्रीमती आकजे वान डर बर्ग (निदरलैंड्स)
श्री रास्को एल० वेस्ट (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
श्री होरेस मान बान्ड (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
(दल के अध्यक्ष)

१. सामाजिक समझ के लिए भावी अध्यापकों को शिक्षा देना

इस रिपोर्ट के लेखक यह भली भाँति जानते हैं कि अध्यापकों में सामाजिक समझ* का विकास करने का कोई विश्वव्यापी ढंग नहीं है। जो सुझाव और सिफारिशें यहाँ संक्षेप में दी जा रही हैं, वे कइयों को सैद्धांतिक रूप से ग्राह्य नहीं

* सामाजिक समझ की परिभाषा इस रिपोर्ट के परिशिष्ट में दी जा रही है।

होंगी, और अभ्यासिक रूप में तो और भी कम ग्राह्य होंगी। जो लोग इस रिपोर्ट को पढ़ेंगे, उन्हें अपनी परम्पराओं और शिक्षा-संबंधी आवश्यकताओं के अनुसार इसमें से चुनाव करने की जरूरत पड़ेगी।

सामाजिक संघर्ष और भ्रमों के कारण कई देशों में स्पष्ट दिखाई देते हैं। दूसरे देशों में यह आवश्यक होता है कि प्रत्यक्ष तथा अनुरूप समाज-व्यवस्था को कुरेद कर देखा जाए। जहाँ भेदभाव कम दिखाई देते हों, वहाँ भी अपने छात्रों को अच्छे नागरिक बनाने के लिए सामाजिक कार्यों में अध्यापकों का सक्रिय भाग लेना जरूरी है। इसलिए जरूरी है कि अध्यापकों का प्रत्येक ट्रेनिंग कालेज पूर्ण रूप से इस उत्तरदायित्व को अपने ऊपर ले कि वह विद्यार्थियों को अधिक सामाजिक समझ की ट्रेनिंग देगा।

ट्रेनिंग कालेज का प्रबंध और वातावरण

अच्छे मानवीय संबंधों के विकास के लिए दल ने ऐसी संस्था की सिफ़ारिश की जिसका प्रबंध लोकतंत्र के सिद्धांतों पर हो, और जिसमें सभी सदस्य, विद्यार्थी और कर्मचारी, बिना किसी भेदभाव के साथ साथ-काम करते हों। लिंग, रंग, जाति, किसी भी भेद के बिना जिस विद्यार्थी की भी आवश्यक शिक्षा संबंधी व व्यक्तिगत योग्यताएं हों, उसे इसमें प्रवेश मिलना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो उसे सरकारी आर्थिक सहायता भी मिलनी चाहिए। कालेज के प्रिंसिपल और अन्य कर्मचारियों को खुद भी लोकतंत्र के सिद्धान्तों से हमदर्दी होनी चाहिए। आपसी बर्ताव और विद्यार्थियों के प्रति अपने व्यवहार से उन्हें सामूहिक जीवन का आदर्श उपस्थित करना चाहिए। कर्मचारियों के बीच और कर्मचारियों व विद्यार्थियों के बीच स्वतंत्र, मित्रतापूर्ण और सुरक्षित वातावरण में सामाजिक सम्पर्क का पूर्ण अवसर होना चाहिए। इसी कारण यह संस्था इतनी छोटी होनी चाहिए कि एक सुगठित समाज का निर्माण को सके।

अध्यापकों की तैयारी में विद्यार्थियों की व्यक्तिगत व सामाजिक आवश्यकताओं और कठिनाइयों, और उनके मानसिक व शिक्षा संबंधी विकास का भी ध्यान रखना चाहिए। पाठ्यक्रम इतने लम्बे होने चाहिए कि विद्यार्थियों में सही वृत्तियों का विकास हो सके। जल्दबाजी और दबाव, और अध्यापन के कार्य के प्रति तैयारी के अभाव की भावना, दोनों से बचने की जरूरत है।

ट्रेनिंग कालेज अलग-अलग नहीं रहना चाहिए। इसे तो उस बड़े समाज में अपना उचित स्थान ग्रहण करना चाहिए जिसका यह एक अंग है और जिसकी यह सेवा करता है। अन्य शिक्षा-संबंधी और सामाजिक संस्थाओं से यह अलग नहीं रह सकता, बल्कि इसे तो उनके साधनों का पूरा उपयोग करना है।

पाठ्यक्रम द्वारा सामाजिक समझ की ट्रेनिंग

अधिकतर जो विषय अध्यापक के पाठ्यक्रम में रखे जाते हैं, वे हैं :

(१) सामान्य शिक्षा,

(२) विशेष विषय,

(३) व्यवसायी अध्ययन।

बहस के बाद दल के सदस्य इस निर्णय पर पहुँचे कि सही दृष्टिकोण से सभी विषय थोड़ी या अधिक मात्रा में सामाजिक व अंतर्राष्ट्रीय समझ में योगदान दे सकते हैं।

(१) सामान्य शिक्षा

प्रथम श्रेणी के ग्रंथ (प्राचीन साहित्य) और प्राचीन इतिहास इस प्रकार उपस्थित किए जा सकते हैं कि उनसे यह पता चले कि वर्तमान संस्कृति के रूप और आत्मा पर भूतकाल का प्रभाव क्या है। और किस प्रकार सामाजिक समस्याएँ और विशेषताएँ सदियों से बनी आ रही हैं। वर्तमान भाषाएँ व साहित्य जीवित मनुष्यों के भिन्न आदर्शों, रीति-रिवाजों और परम्पराओं को दर्शाते हैं। चित्रकला व संगीत के विकास में प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों का हाथ है। ये कलाएँ विद्यार्थियों को व्यक्तियों, दलों और राष्ट्रों की विशेषताएँ समझने में सहायता कर सकती हैं जिससे वे परस्पर आश्रित संसार की भिन्नताओं के मूल्यों को पहचान सकें।

सब ट्रेनिंग लेनेवाले विद्यार्थियों को विज्ञान की सामान्य शिक्षा लेनी चाहिए, यदि उन्होंने पहले ही इस विषय में विशिष्टता प्राप्त नहीं की। ऐसी शिक्षा में ऐसे कई अवसर आ सकते हैं, जिनमें वैज्ञानिक ज्ञान, खोज और आविष्कार के सामाजिक और शायद राजनीतिक अर्थों का भी अध्ययन किया जा सकेगा। विज्ञान के इतिहास और वैज्ञानिकों की जीवन-कथाओं में मानव-सफलता के शानदार उदाहरण भरे पड़े हैं। वैज्ञानिक ढंग बौद्धिक व भावनाहीन रीति से सच्चाई का अन्वेषण करना सिखाता है, इसी रीति से उन सामाजिक समस्याओं को भी सुलझाया जा सकता है, जो पक्षपात के कारण धुंधली पड़ जाती हैं।

(२) विशेष विषय

इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक-शास्त्र—ये सामाजिक-अध्ययन के कोर्स के प्रधान तत्व हैं। ये सामाजिक समझ के लिए पृष्ठभूमि और अच्छी नागरिकता के अर्थों की चेतना दोनों दे सकते हैं। हमारा सुझाव है कि ये

अध्ययन यथार्थ-जीवन की अवस्थाओं से संबंध स्थापित करके किए जाएँ और साथ ही समाज में सक्रिय खोज और व्यावहारिक अनुभव भी सम्मिलित हों। विशेष सामाजिक समस्याओं पर सामग्री प्राप्त करने के लिए पुस्तकों, दस्तावेज़ों, कर्ण व नेत्र साधनों, बाहर के विशेषज्ञों के व्याख्यानों, और क्षेत्र की व्यक्तिगत जाँचों, सभी का प्रयोग किया जा सकता है। व्यावहारिक कार्य और इसके द्वारा सामाजिक समस्याओं के अनुसंधान में निपुणता को बढ़ाने का जो अवसर प्राप्त होता है—इनसे भावी अध्यापक की संवेदनाओं के प्रसार में सहायता मिलेगी। अधिक परिपक्व विद्यार्थी, जो अनुसंधान के ढंगों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, कोर्स में आगे चलकर विशिष्ट प्रकार के अध्ययनों में दिलचस्पी ले सकते हैं।

मगर ध्यान रखना चाहिए कि इतिहास, भूगोल और अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम बहुत अधिक स्थानीय न हों। अगर वे भिन्न देशों की भिन्न समस्याओं, रूढ़ियों और जीवन-यापन के तरीकों के विषय में होंगे, तो उनसे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की समझ में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार जीवन-स्तर, आर्थिक झगड़े, जीवित रहने के लिए जगह, मज़दूर-समस्याएँ, अल्प-संख्यक लोगों की समस्याएं और बड़े पैमाने पर आर्थिक योजनाएं, सब बातें समझ में आ जाएंगी जो राष्ट्र की केवल अपनी चिन्ता के क्षेत्र नहीं हैं।

(३) व्यवसायी अध्ययन

ट्रेनिंग लेनेवाले अध्यापकों के लिए, 'व्यवसायी विषयों' में सम्मिलित होंगे : सामान्य, सामाजिक और शिक्षा-संबंधी मनोविज्ञान, शिक्षा के सिद्धान्त, शिक्षा का इतिहास, तुलनात्मक शिक्षा, व अध्यापन के ढंग और अभ्यास। इन सबका सीधा प्रभाव सामाजिक समझ पर पड़ता है। उदाहरण के लिए, शिक्षा के इतिहास और विशेषकर तुलनात्मक इतिहास से विद्यार्थी जान व समझ सकता है:

(अ) कि समाज के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे को, और उसके आदर्श को, स्कूल प्रतिबिंबित करता है,

(आ) कि समाज के सामाजिक, जाति व धर्म-संबंधी भेदभावों को स्कूल प्रतिबिंबित करता है,

(इ) कि अद्वितीय व्यक्तियों और दलों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में दिए गए योगदान का अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव होता है,

(ई) कि शिक्षा में संगठन और प्रशासन की समस्याएं भिन्न देशों में अधिकतर एक जैसी हैं।

व्यवसायी विषयों द्वारा न केवल विद्यार्थी को शिक्षा के ढंगों और अभ्यासों की सूचना प्राप्त होनी चाहिए, बल्कि अपने देश की शिक्षा-पद्धति को सही दृष्टि से देखने की क्षमता भी उसमें उत्पन्न होनी चाहिए। सामान्य स्कूली सक्रियताओं में भाग लेने के लिए, भिन्न ज़िलों के भिन्न भाँति के स्कूलों में अनुभव प्राप्त करने के लिए, और बालकों के माता-पिताओं के साथ मैत्री के सम्पर्क स्थापित करना सीखने के लिए विद्यार्थियों को अवसर मिलने चाहिए और ये सब अध्यापन के ढंग सिखाने के कोर्स के भाग होने चाहिए।

सहानुभूति और अनुसंधान की प्रकृति का विकास करना

दल ने इस बात को महत्व दिया कि सभी विषय मानव-अनुभव और प्रयत्न के रिकार्डों के रूप में पढ़े जाएं, न कि तार्किक रीति से एकत्रित की गई सूचना के रूप में। यह ठीक है कि बहुत कुछ अध्यापकों पर निर्भर करेगा, मगर अध्यापकों का ट्रेनिंग की अवधि में हमेशा सचेत उद्देश्य यह रहना चाहिए कि विद्यार्थियों में सहानुभूति और अनुसंधान की प्रवृत्ति के विकास में सहायता दें।

हमारी सलाह है कि विद्यार्थियों को न केवल स्कूल की अवधि में, बल्कि छुट्टियों में भी कालेज के क्षेत्र के बाहर सामाजिक सक्रियताएं खोजने को उत्साहित करना चाहिए। यह काम वे युवक-क्लब व छुट्टी-कैम्प में सम्मिलित होकर, भिन्न ज़िलों में कारखाने, सुधार केन्द्र, दवाखाने, अदालत घर इत्यादि देखकर पूरा कर सकते हैं। स्थानीय हालतों के विषय में पूछताछ करने से बहसों के विषय प्राप्त हो सकते हैं और इनके द्वारा विद्यार्थी विशेष सामाजिक समस्याओं के सविस्तार अध्ययन की ओर अग्रसर हो सकते हैं। इस प्रकार उन्हें पता चलेगा कि कैसी समस्याएं उपस्थित हैं और कैसे भेदभावों को ध्यान से देखने और समझने की आवश्यकता है। उन्हें पता चलेगा कि अध्यापक के लिए यह जानना कितना जरूरी है कि लोग कैसे रहते हैं, कैसे काम करते हैं, और अवकाश का समय वे कैसे बिताते हैं।

२. काम करनेवाले अध्यापक को सामाजिक समझके लिये शिक्षा देना

सामाजिक समझ के लिए अध्यापक को शिक्षा देने के विषय पर बहस के दौरान में दल ने एक और उतनी ही महत्वपूर्ण समस्या का उल्लेख किया। यह थी ट्रेनिंग कालेज छोड़ने के बाद अध्यापक की इस शिक्षा को जारी रखने की समस्या। मगर जितना ध्यान व समय इस समस्या को देना आवश्यक था, उतना सम्भव नहीं हो सका। निम्नलिखित सुझाव केवल बहस के आधार के रूप में दिए जा रहे हैं, दल की सिफारिशों के रूप में नहीं।

अध्यापक की कार्य-अवधि के प्रत्येक दर्जे पर सहायता की आवश्यकता है। मगर उन युवा अध्यापकों के लिए यह और भी जरूरी है जो ऐसे स्कूलों में पढ़ाना आरम्भ करते हैं, जिनके ढंग उनके पुराने स्कूलों के ढंग से सर्वथा भिन्न हैं और जहाँ के अन्य कार्यकर्त्ता सामाजिक समस्याओं और उन्हें सुलझाने के उपायों में नवागन्तुक की दिलचस्पी को उदासीनता अथवा नैराश्यता और शत्रुता से देखते हैं। अधिकतर अध्यापक अलग-अलग ही कार्य करते हैं। उन्हें एक दूसरे को काम करते देखने का बहुत कम अवसर प्राप्त होता है या दिया जाता है। अनुभवों की अदल-बदल और सहयोग से कार्य करने के अवसर भी कम होते ह। सुचारु ढंग से सूचना देकर बहुत से अध्यापक यह समझ लेते हैं कि उनका कार्य सन्तोषजनक हुआ है। अपने शिष्यों के विषय में उनकी मानसिक योग्यताओं, स्कूल के कार्यों और व्यवहार के अतिरिक्त वे बहुत कम जानते हैं।

पढ़ानेवाले अध्यापकों में अधिक सामाजिक समझ के विकास के लिए दल ने निम्नलिखित उपायों को लाभकारी समझा :

(१) अध्यापकों के संघों और शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं द्वारा सम्पादित पाक्षिक पत्र व रिपोर्टें,

(२) रेडियो पर प्रसारित भाषण और विचार-गोष्ठियाँ,

(३) अध्यापकों के पत्रों में समालोचित सामाजिक समझ के विषय पर लिखी पुस्तकें जो अध्यापकों के लिए स्कूलों के पुस्तकालयों में प्राप्य हों,

(४) पत्र-व्यवहार में विचारों का आदान-प्रदान,

(५) ऐसे शिक्षा-सम्बन्धी केन्द्रों को देखने जाना जहाँ सामाजिक अवस्थाओं के विषय में प्रयोग किए जाते है, उदाहरणार्थ—'सक्रियता-स्कूल', बालकों के गाँव व कैम्प, अन्य युवा-संस्थाएँ, इत्यादि,

(६) ऐसे अध्ययन-केन्द्र जो कान्फ्रेंसें, नवकर कोर्स और छुट्टियों के कोर्स करेंगे। अध्ययन के विषय और व्याख्यान देने बुलाये जानेवाले व्यक्तियों का चुनाव इस उद्देश्य को सम्मुख रखकर किया जाना चाहिए कि अध्यापकों को वर्तमान सामाजिक व आर्थिक समस्याओं की, विश्वस्त और उत्तेजनापूर्ण प्रस्तावना मिले।

अध्यापक-संघों और शिक्षा-अधिकारियों को प्रयत्न करना चाहिए कि अध्यापकों को अपने साथियों से सम्पर्क रखने और व्यवसाय के बाहर के मित्र बनाने की सुविधाएँ मिल सकें। भिन्न वातावरणों में छुट्टियाँ, विदेश भ्रमण और 'शिविर' —उस दृष्टिकोण की संकीर्णता और सामाजिक अनुभव के अभाव को पूरा करेंगे जो एक ही स्थान पर एक ही दल में अधिक देर कार्य करते रहने से पैदा होते हैं।

३. सामाजिक समझ के लिए अध्यापकों को शिक्षा देने का समाज-व्यवस्था से सम्बन्ध

शिक्षा-सम्बन्धी अवसर और अध्यापन के ढंगों का लोकतन्त्रीयकरण

अब तो प्रायः सर्वमान्य लोकतन्त्रीय सिद्धान्त है कि शिक्षा सम्बन्धी अवसर सब के लिए बराबर होने चाहिए। इस सिद्धान्त को कार्य रूप में परिणत करने का अर्थ है कई देशों की अन्य चीजों के अलावा अनिवार्य शिक्षा में बढ़ती। स्कूली कार्य में अधिक विविधता की भी आवश्यकता है ताकि भिन्न योग्यताओं के बालकों की जरूरतें सही तौर से पूरी हो सकें। शारीरिक असमर्थतावाले बच्चों के लिए भी प्रबन्ध होने चाहिए। अधिक असुविधा प्राप्त बच्चों के लिए विशेष स्कूल होने चाहिए और कम असुविधावाले को सामान्य कक्षाओं में शिक्षा देने के लिए अध्यापक को ट्रेनिंग दी जानी चाहिए।

जो देश स्व-शासित नहीं उनकी शिक्षा समस्याओं पर दल ने विशेष ध्यान दिया। राजनीतिक व आर्थिक समस्याओं में न जाकर अगर देखा जाए तो यह स्पष्ट होगा कि उपनिवेश-स्थापकों ने उन लोगों की शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जिन पर वे राज्य करते रहे हैं। अगर हमें अच्छी सामाजिक व अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए सही वृत्तियों का विकास करना है तो यह ज़रूरी है कि शासक शक्तियाँ इस विषय में कदम उठाएँ। अपने उपनिवेशों के साथ मिलकर वे शिक्षा के ऐसे कार्यक्रम बनाएँ जिनसे लोगों को व्यक्तिगत व सामाजिक विकास के लिए सही किस्म के अवसर प्राप्त हो सकें। ऐसी शिक्षा लोगों की उन्नति के दर्जे के अनुसार होनी चाहिए, मगर इसके साथ ही ऐसी लचीली होनी चाहिए कि जनता की प्रगति के साथ वह बदली भी जा सके। जो स्वशासित लोग नहीं हैं, उनके लिए कार्यक्रमों में सबसे आवश्यक चीजें ये हैं :

(१) शिक्षा सम्बन्धी बजट में पर्याप्त बढ़ती,

(२) स्थानीय जनता में से लिए गए अध्यापकों की शिक्षा,

(३) शिक्षा-साधन के रूप में स्थानीय भाषाओं के विकास का प्रोत्साहन। वैज्ञानिक व सरकारी काम काज के लिए राज्य करनेवाले देश की भाषा के साथ-साथ ये स्थानीय भाषाएँ भी छोटे और बड़े दर्जों में सिखानी चाहिए,

(४) सामाजिक समझ को बढ़ाने में सहायक होनेवाली दशाओं में ऐसी कक्षाओं का प्रबन्ध करना जिनमें शासन करनेवाले और शासित दोनों दलों के बच्चे पढ़ें। साथ ही ऐसी सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी सक्रियताओं को प्रोत्साहन जिनमें पारस्परिक दिलचस्पी के आधार पर जनता सम्मिलित हो सके।

(५) शासन करनेवाले देशों की ओर से उदार आर्थिक सहायता जिसके द्वारा शासित देशों, शासक देशों और अन्य देशों के बीच विद्यार्थियों की अदला-बदली बढ़े।

शिक्षा सम्बन्धी पद्धतियों के अन्दर विभाजन

एक समुदाय के भिन्न अंगों में जहाँ गहरे मतभेद हैं, वहाँ पारस्परिक समझ और आदर स्थापित करने के रास्ते में बड़ी कठिनाइयाँ होती हैं। ऐसे मतभेद अधिकतर शिक्षा के क्षेत्र में भी आ पहुँचते हैं, जिनके द्वारा सामाजिक तनाव अधिक गहरा और लम्बा होता जाता है।

इस कठिन समस्या के लिए दल ने अध्ययन-हेतु सात महत्वपूर्ण प्रश्नों को चुना :

(१) किशोरों को उनकी योग्यता, उनके माता-पिता के सामाजिक स्तर, और उनकी व्यवसाय-सम्बन्धी वृत्तियों के अनुसार विशेष प्रकार के स्कूलों में अलग-अलग करने का सामाजिक समझ पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(२) नर्सरी स्कूलों, प्राथमिक स्कूलों, माध्यमिक स्कूलों और शिक्षा की भिन्न शाखाओं के अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए अलग-अलग संस्थाओं के प्रबन्ध का क्या प्रभाव होता है ?

(३) अध्यापकों को ट्रेनिंग देनेवाली संस्थाओं और अन्य ज्ञान-सम्बन्धी व्यवसायों के लिए लोगों को तैयार करनेवाली संस्थाओं में स्पष्ट विभाजन क्या बुद्धिमत्ता का काम है ?

(४) एक स्थान पर रहनेवाले भिन्न जातीय दलों को भिन्न स्कूलों में रखकर उन्हें अलग-अलग करना क्या उचित है ?

(५) विशेष धार्मिक दलों के लिए अलग शिक्षा-प्रबन्ध से क्या लाभ होता है।

(६) क्या महत्वपूर्ण स्कूलों के समूहों पर विशेष अधिकारवाले सामाजिक वर्गों का एकाधिपत्य जारी रहना चाहिए ?

(७) क्या बढ़ते हुए लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग संस्थाओं में शिक्षा देनी चाहिए ?

इन पेचीदा समस्याओं के सामने, दल ने यह स्वीकार किया कि चूँकि प्रत्येक देश की दशा भिन्न है, चूँकि भिन्न समूह सामाजिक व शिक्षा सम्बन्धी विकास के भिन्न दर्जों पर पहुँच चुके हैं, और चूँकि व्यावहारिक निर्णय करने में सामाजिक समझ के अलावा और भी बातें सम्बद्ध हैं, इसलिए ब्योरेवार और विशिष्ट सिफारिशें देने का प्रयत्न करना सम्भव नहीं है। निर्णय हुआ कि दल सामान्य सिद्धान्तों पर सहमत होने का प्रयत्न करे। ये सिद्धान्त आदर्श समझे जाएँ और इनके आधार पर ही प्रशासकीय नीतियों को और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति को आँका जाए।

इस पर सब सहमत हुए कि उपर्युक्त विभाजनों में से कुछ, सामाजिक समझ के विकास को रोकते हैं। समुदाय के भिन्न अंगों के एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानने में ये बाधक होते हैं। उस आधारभूत और साझे की मनुष्यता को स्वीकार करने की क्षमता के विकास में ये बाधक होते हैं, जो जाति, धर्म और व्यवसाय में भिन्न होते हुए भी एक है। यह भिन्नता सामाजिक जीवन की विविधता और शोभा को भी व्यक्त करती हैं, यह न भूलना चाहिए।

निम्नांकित विशेष निर्णय किए गए :—(अ) विशेष प्रकार के स्कूलों की जगह माध्यमिक शिक्षा की एक ही पद्धति बेहतर रहेगी, जैसी विस्तृत स्कूलों में पाई जाती है, (आ) कि जो विद्यार्थी अध्यापन व्यवसाय की भिन्न शाखाओं में जाना चाहते हैं, उन्हें व्यवसायी-शिक्षा का कम-से-कम कुछ भाग एक ही संस्था में देना चाहिए, (इ) कि अध्यापक-ट्रेनिंग कालेजों और विश्वविद्यालयों के बीच और विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग और उसके अन्य विभागों के बीच काफ़ी पास के सम्बन्ध का विकास होना चाहिए, (ई) कि एक स्थान के भिन्न जातीय दलों के बालकों को एक ही स्कूल में जाना चाहिए, (उ) कि एक समुदाय के भिन्न धर्म के बच्चों का भी एक ही स्कूल में जाना उचित प्रतीत होता है, (ऊ) कि जहाँ 'निजी' स्कूलों में विशेष शिक्षा साधन हैं, ऐसे स्कूल समुदाय के सभी लोगों के लिए खुले होने चाहिए, (ए) कि सह-शिक्षा उचित है, मगर इसके साथ ही विकास के कुछ दर्जों पर लड़कों और लड़कियों के पाठ्यक्रम में उचित सुधार हो सकता है।

यहाँ इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि इस सहमति का आधार केवल यह माना गया था कि अमुक शिक्षा-सम्बन्धी रीति सामाजिक समझ के विकास को सहायता देगी अथवा उसमें बाधा डालेगी। इस सिद्धान्त का प्रयोग करते हुए दल सभी बातों में सहमत हुआ। पहली और अन्तिम सिफारिशों के अलावा बाकी सभी सिफ़ारिशें सर्वसम्मति से पास हुईं।

दल यह सिफ़ारिश नहीं करता कि समुदाय तैयार न हो तो भी एकाएक परिवर्तन कर डाले जाएँ। मगर तब भी ये सिफ़ारिशें उन पारस्परिक आदर और समझ की मंजिलों की सूचक हैं जहाँ पहुँचने के लिए हमें निरन्तर चेष्टा करनी चाहिए।

अध्यापन व्यवसाय की सामाजिक स्थिति

सामाजिक समझ के प्रति अध्यापक का योगदान समाज पर अध्यापन-व्यवसाय के सामान्य असर के अनुरूप ही होगा। जिस समुदाय में अध्यापकों का बहुत आदर होता है, बहुत सम्भव है कि यदि वे समुदाय में सामाजिक समझ की वृद्धि

के कार्य को करना आरम्भ करें तो उन्हें लोगों से अधिक सफलता प्राप्त होगी। इसलिए यह ज़रूरी है कि हम उन बातों पर ध्यान दें जिनके द्वारा सामान्य जनता अध्यापकों का मूल्य आँकती है और वे सुझाव दें जिनके द्वारा अध्यापक आत्म-गौरव के साथ-साथ जनता में भी उत्तरोत्तर पा सकते हैं।

व्यवसाय को बहुत अच्छा समझा जाएगा यदि इसके व्यक्ति सच्चरित्र और अपने काम में ट्रेनिंग प्राप्त व योग्य होंगे। अगर व्यवसाय में ऐसे लोग हैं जिनमें ये गुण उपस्थित नहीं, तो व्यवसाय की सामाजिक स्थिति सदा नीची ही रहेगी। व्यवसाय के सदस्यों के चलन और योग्यता के अनुसार ही समुदाय उनके प्रति अपनी धारणाएँ बनाएगा। यह भी हो सकता है कि समुदाय अध्यापक के अपने मूल्यांकन द्वारा प्रभावित हो। इसलिए हम यह सुझाव देते हैं कि अध्यापक को ट्रेनिंग देनेवाली संस्थाएँ अपने विद्यार्थियों में यह विचार डालें कि समाज के प्रति उनकी सेवा का सामाजिक मूल्य बहुत है। इस कार्य से अध्यापक की सामाजिक स्थिति बढ़ेगी। हमारा विचार है कि यदि समुदाय के जीवन में अध्यापक भी सामान्य नागरिक की भाँति अपना स्थान ग्रहण करने को तैयार हों तो उनकी स्थिति और प्रभाव दोनों में वृद्धि होगी। उनकी सफलता, लोक-प्रियता और सहयोग से व्यवसाय का नाम बढ़ेगा। कुछ दशाओं में ऐसा कार्य करने की योग्यता उनके आर्थिक स्तर पर भी आश्रित होगी। कम वेतन और और अन्य साधन-हीनताएँ उन्हें सामाजिक जीवन में ओत-प्रोत होने से रोक सकती हैं और इसी कारण अध्यापक अपने आपको और अपने व्यवसाय को बहुत नीचा समझ सकता है। सो अध्यापकों का गौरव और उनकी प्रतिष्ठा कुछ तो अध्यापकों द्वारा निर्धारित होती है, कुछ उस आर्थिक मूल्यांकन पर जो सरकार शिक्षा के विषय में करती है और कुछ बालकों और उनके माता-पिता के मत पर, जिनका अच्छा या बुरा, स्कूल के बाहर या भीतर अध्यापकों से व्यक्तिगत सम्पर्क रहा है।

व्यवसाय की बनावट के कुछ पहलू ऐसे हैं, जो सामाजिक समझ से विशेष सम्बन्ध रखते हैं। यदि अध्यापक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक या जातीय पक्षपातों को लेकर व्यवसाय में आते हैं, तो उनकी ट्रेनिंग कठिन होगी और उनके कार्य से किसी लाभ की आशा भी कुछ सन्देहपूर्ण होगी। हमारा विश्वास है कि अधिकतर बहुत से देशों में अध्यापकों की भरती ऐसे सामाजिक दलों में से नहीं की जाती जिनमें शक्तिशाली और अन्धे करनेवाले पक्षपात होते हैं। इसलिए सामाजिक समझ के लिए उनकी ट्रेनिंग तुलनात्मक दृष्टि से आसान होनी चाहिए। यह सोचना अत्योक्ति न होगी कि यदि किसी समुदाय के विशेष अधिकारों से वंचित दलों में से अधिक अध्यापक लिए जाएँ तो उन्हें ऐसे दलों के बालकों से विशेष हमदर्दी होगी। मगर यहाँ यह बताना आवश्यक है कि आजकल

भी ऐसी हमदर्दी मौजूद है और विशेष अधिकारों से वंचित होने की भावना एक ऐसी शिकायत का रूप ले सकती है जो सामाजिक समझ के विरुद्ध वृत्ति का विकास करे। इसमें सन्देह नहीं कि आदर्श अवस्था वह होगी जिसमें अध्यापक उन सभी दलों और वर्गों में से चुने जाएँ जो किसी समुदाय के भाग हैं। इसी तरह यह भी ज़रूरी है कि व्यवसाय में स्त्री और पुरुष लगभग बराबर संख्या में हों ताकि बालक और बालिकाएँ अपने शिक्षा-काल में स्त्री व पुरुष दोनों के असर में आएँ।

यदि वे एक साझे ध्येय से बँधे होंगे और उनके आपसी मतभेद नही होंगे तो भी इस व्यवसाय की सामाजिक स्थिति में अन्तर आएगा। व्यवसाय के अन्दर अनुरूपता लाने के कई उपाय हैं जिनमें से कुछ ऊपर कही गई बातों में निहित हैं। भिन्न अध्यापक-दलों की ट्रेनिंग, योग्यता, वेतन और कार्य की दशाओं में यदि बहुत अन्तर होगा तो इससे व्यवसायी-जुटाव न हो सकेगा। और इसलिए अध्यापकों के योगदान का मूल्य भी कम होगा। जब अध्यापक-ट्रेनिंग संस्थाओं की प्रतिष्ठा भी विश्व-विद्यालयों जैसी हो जाएगी, तब व्यवसाय की सामाजिक स्थिति भी अच्छी हो जाएगी। जैसा पहले ही कई देशों ने सुझाव दिया है, अध्यापकों के कालेजों और विश्वविद्यालयों के बीच अधिक निकट का सम्पर्क उपस्थित करके यह प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

अध्यापकों की कमी की समस्या बहुत से देशों की साझी समस्या है और ऐसा सोचना उचित होगा कि इससे भी व्यवसाय की सामाजिक स्थिति को हानि पहुँच सकती है। कार्यकर्त्ताओं की कमी के कारण शिक्षा-अधिकारी बाध्य होकर कम योग्य व्यक्तियों को अध्यापक बना सकते हैं और उनकी ट्रेनिंग की अवधि को भी कम कर सकते हैं। इस नीति से न केवल व्यवसाय का स्तर गिर सकता है, बल्कि इससे अध्यापकों में भी मतभेद पैदा हो सकता है। दूसरी और इंगलिश इमर्जेंसी ट्रेनिंग स्कीम यह दर्शाती है कि वर्तमान संकटकाल द्वारा ऐसे स्त्री व पुरुष व्यवसाय में आए हैं जो यद्यपि नियमित योग्यताएँ न रखते हुए भी अच्छे व्यक्तिगत गुण रखते हैं और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि और अनुभव भाँति-भाँति के हैं। ऐसे अध्यापक सामाजिक समझ के लिए सार्थक योगदान देने में समर्थ होने चाहिए। मगर साथ ही इस बात की ओर संकेत किया गया कि उपनिवेश देशों में भरती के ये भिन्न साधन आसान नही होंगे, और ऐसे स्थानों में अध्यापकों की कमी से बहुत गम्भीर अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

अध्यापकों की भरती

अध्यापन व्यवसाय के लिए ऐसे लोगों की भरती जो सामाजिक समझ में योगदान दे सकें—इस समस्या पर लम्बी बहस के बाद निम्नलिखित सिफ़ारिशें की गईं:

(१) कि सामान्यतः वेतनों की पर्याप्त वृद्धि की आवश्यकता है, कि पर्याप्त पेंशन का प्रबन्ध होना चाहिए, कि विलक्षण योग्यता को अधिक वेतन देकर मान्यता दी जानी चाहिए। अध्यापक-संस्थाओं से कहा जाता है कि वे ऐसी योग्यता की पहचान के उपायों की खोज करें,

(२) कि प्रमाण-पत्र के लिए कम-से-कम माँग होनी चाहिए पर्याप्त माध्यमिक शिक्षा और व्यवसायी-ट्रेनिंग की, और जैसे दशाओं में सुधार हो, अधिक अच्छे स्तर की माँग की जाए,

(३) कि अध्यापकों के लिए काम की सन्तोषप्रद हालतें पैदा करने के लिए भवन और सामान का सुधार करना चाहिए और प्रति कक्षा के विद्यार्थियों की गिनती कम करनी चाहिए,

(४) कि प्रायः सभी देशों में अध्यापकों के रहने के स्थानों की अवस्था का, विशेषकर ग्रामों में, सुधार करना चाहिए जिससे उनका स्तर अन्य व्यावसायिक कार्य-कर्त्ताओं से कम न हो,

(५) कि सभी देशों में उन्नति के अवसर बढ़ाने चाहिए और अधिक उत्तर-दायित्व के लिए अधिक वेतन मिलना चाहिए,

(६) कि अध्यापकों को बिना रुकावट के अपना जीवन-यापन करने का अधिकार होना चाहिए—जैसे समाज के अन्य सदस्यों को होता है,

(७) कि अध्यापकों को, विशेषकर माध्यमिक स्कूल के अध्यापकों को उचित विद्यार्थियों को व्यवसाय की ओर आकर्षित करने के लिए अपने प्रभाव का प्रयोग करना चाहिए,

(८) कि ट्रेनिंग संस्थाओं में भरती की शर्तों और असन्तोषजनक अध्यापकों को स्कूल में रखने की समस्याओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए। केन्द्रीय प्रबन्ध अधिकारियों, ट्रेनिंग संस्थाओं और अध्यापक-संघों से इस विषय में सहयोग की माँग की गई।

परिशिष्ट : **सामाजिक समझ की एक परिभाषा**

१. सामान्य पहलू

'सामाजिक समझ' की परिभाषा की समस्या को दो दृष्टिकोणों से देखा गया : (अ) समाज के एक सदस्य के दृष्टिकोण से, और (आ) समाज के अपने दृष्टिकोण से।

इस बात पर हम जोर देते हैं कि 'समझ' शब्द का जो व्यवहार यहाँ हुआ है, वह एक ओर कुछ तथ्यों का ज्ञान दर्शाता है तो दूसरी ओर व्यक्तिगत व्यवहार में उन तथ्यों की विशेषता की स्वीकृति हो।

यह माना जाता है कि सामाजिक समझ की चौड़ाई और गहराई, व्यक्ति और उसके सामाजिक दल की पेचीदगियों पर निर्भर करती है।

अ : व्यक्तिगत पहलू

१. व्यक्ति के दष्टिकोण से यह स्वीकार किया जाता है (१) कि अपने सम्पूर्ण जीवन-काल में वह क्रमशः बढ़ते हुए सामाजिक जीवन के दायरों का सदस्य बनता जाता है—परिवार दल, पड़ोस दल, स्कूल दल, राजनीतिक संघ, राष्ट्र और अन्य दल, (२) कि प्रत्येक दर्जे पर उसका जीवन भिन्न रीतियों मे उस दल या उन दलों पर निर्भर है जिसका वह सदस्य है और कि दूसरों का जीवन कई प्रकार से उसके अपने ऊपर निर्भर करता है।

२. इससे यह तथ्य निकलता है कि व्यक्ति के दृष्टिकोण से 'सामाजिक समझ' का अर्थ व्यक्ति के अन्तर का वह विकास है जो उसे (१) व्यक्ति और व्यक्ति की परस्पर निर्भरता को समझने और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि-कोण रखने में सहायक होता है—दूसरे शब्दों में व्यक्ति के दिल में अन्य लोगों के प्रति निर्भरता, सच्चाई और मेल का भाव होना चाहिए, (२) उन क्रियाओं की जानकारी प्राप्त हो जिनमें उसका अपना जीवन अन्य सामाजिक दलों पर निर्भर है जिनका वह सदस्य है—और इसी तरह उन क्रियाओं की जानकारी प्राप्त हो जिनसे दल का जीवन उसके प्रत्येक सदस्य के कार्य पर निर्भर है। दूसरे शब्दों में उसे उन दलों के ज्ञान की आवश्यकता है जिनमें वह जीवन व्यतीत करता है।

आ : सामाजिक पहलू

१. सामाजिक दल के दष्टिकोण से यह स्वीकार किया जाता है (१) कि प्रत्येक का अपना जीवन-आकार होता है जो उसके रीति-रिवाजों, कानून, व्यवहार के स्तरों, संस्थाओं, मूल्यों, धार्मिक विश्वासों इत्यादि से प्रकट होता है, (२) कि प्रत्येक दल अपने सामाजिक जीवन का निचोड़ अपने दल के प्रत्येक सदस्य में पहुँचा देता है, (३) कि फैलना दलों का स्वभाव है, इस दृष्टिकोण से कि वे अपने मानदण्डों को अन्य दलों पर लागू करना चाहते हैं। इसी तरह जो दल मूल्यों में विरोध पैदा करते हैं, उनके सदस्यों पर अन्य दल एकाधिपत्य स्थापित करना चाहते हैं।

२. सो 'सामाजिक समझ' का तथ्य वह विकास होना चाहिए जो दलों के आन्तरिक विकास और प्रत्येक सदस्य के विकास को इस रीति से पूर्ण करे कि (१) दलों की पारस्परिक निर्भरता के लाभ और उसके लिए सहानुभूति के भाव

पैदा हों और (२) उन तरीकों का ज्ञान हो जिन पर एक दल अन्य दलों पर निर्भर करता है, चाहे वे दल अपने से छोटे हों या बड़े। दूसरे शब्दों में दल-अधिकारों और दल-कर्त्तव्यों के ज्ञान की आवश्यकता है।

२. सामाजिक जीवन के भिन्न क्षेत्रों मे सामान्य सिद्धान्त को लागू करने के ढंग

मोटे तौर पर तीन भिन्न स्तर हैं जहाँ सामाजिक समझ आवश्यक है: (अ) व्यक्ति के स्तर पर, जहाँ एक व्यक्ति के अन्य व्यक्तियों और भिन्न सामाजिक दलों के साथ सम्बन्ध हैं। (आ) सामाजिक दल के स्तर पर, जहाँ बड़े पैमाने पर बने हुए दलों, जैसे राष्ट्रों, अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं और साम्राज्यों के साथ, एक सामाजिक दल के सम्बन्ध हैं, और (इ) अधिक स्वतन्त्र दलों के स्तर पर जहाँ एक अधिक स्वतन्त्र दल के अन्य ऐसे दलों से सम्बन्ध हैं।

अ : व्यक्ति के स्तर पर

१. आवश्यक ज्ञान

निम्नलिखित दलों और समुदायों के अन्दर मनुष्य-व्यवहार के तथ्य :

(१) परिवार, गोत्र, कबीला, इत्यादि*
(२) खेल-दल
(३) स्कूल-कक्षा और स्कूल
(४) पड़ोस—अन्य व्यक्ति और जायदाद से सम्बद्ध
(५) धार्मिक दल
(६) आर्थिक स्तर द्वारा निर्धारित दल
(७) क्लब और अन्य स्वेच्छिक संघ
(८) प्रशासन का स्थानीय प्रदेश—उदाहरणार्थ, नगर-इकाइयाँ, पोस्ट आफिस, पुलिस, परिवहन-सत्ताएँ
(९) राष्ट्र
(१०) सभ्यताएँ: प्रादेशिक संघ, भाषा दल
(११) अन्तर्राष्ट्रीय संघ

* संकेत किया गया कि पश्चिमी अर्थों में 'परिवार' शब्द का संसार के अन्य भागों में हमेशा वह अर्थ नहीं होता जो परिवार, गोत्र, कबीले, आदि से समझा जाता है। ये परिवार दल कभी-कभी इतने बांधने वाले प्रभाव के होते हैं कि सामाजिक समझ में रुकावट भी पैदा कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ धर्मों में स्त्री व पुरुष की सामाजिक स्थिति में इतना अंतर होता है कि उन्हें भिन्न दलों के रूप में समझना आवश्यक है।

२. विकास योग्य वृत्तियाँ

जैसे-जैसे प्रत्येक दल, जिसमें व्यक्ति अपने जीवन का कुछ भाग व्यतीत करता है, अधिक पेचीदा होता जाता है, वैसे-वैसे निम्नलिखित वृत्तियों के उत्तरोत्तर विकास की आवश्यकता है :

(१) दल के अन्य सदस्यों की आवश्यकताओं का सहानुभूतिपूर्ण विचार,
(२) दल की अवस्था के अनुसार अन्य सदस्यों के साथ काम करने, नेतृत्व के उत्तरदायित्व स्वीकार करने, अथवा अन्य किसी के नेतृत्व को स्वीकार करने की तत्परता,
(३) अन्य लोगों के साथ सम्बन्धों में सच्चाई,
(४) अपने आपको व दूसरों को समझने के प्रयत्न में सचेत कर्म-विषयता,
(५) अन्य लोगों के ध्येयों व आदर्शों को समझने और उनका आदर करने की तत्परता—मगर उस बिन्दु से आगे नहीं जहाँ वे सहनशीलता और स्वतन्त्रता के सर्वमान्य सिद्धान्तों को मानने से इनकार करें।

आ : बड़े पैमाने पर बने हुए दलों के भीतर कार्य करते हुए दलों के स्तर पर

१. आवश्यक ज्ञान

(१) प्रत्येक दल की स्थापना के उद्देश्य,
(२) प्रत्येक दल पर कुछ नियन्त्रण हैं जो इसलिए लागू होते हैं, क्योंकि सभी दल परस्पर आश्रित हैं, क्योंकि छोटे दल बड़े दल के ढाँचे में कार्य करते हैं, और क्योंकि एक दल के सदस्य उसी समय भिन्न उद्देश्यों के अन्य दलों के भी सदस्य हैं,
(३) भिन्न दलों के भिन्न दावों का समझौता करानेवाली संस्थाएँ,
(४) मुख्य सामाजिक दलों का इतिहास, उनके आकार का विकास, और उनके कार्य।

२. विकास योग्य वृत्तियाँ

इन दलों के लिए आवश्यक है कि वे निम्नलिखित वृत्तियों का विकास करें :

(१) दूसरे दलों के कार्यों का सहानुभूतिपूर्ण विचार,
(२) अन्य दलों के उद्देश्यों व आदर्शों को समझने की तत्परता—मगर उस बिन्दु से आगे नहीं जहाँ वे सहनशीलता और स्वतन्त्रता के सर्वमान्य सिद्धान्तों को मानने से इनकार करें,

(३) इस बात को समझने की तत्परता कि प्रत्येक सदस्य की एक से अधिक दलों के प्रति निष्ठाएँ होती हैं और कि ये निष्ठाएँ कभी-कभी आपस में प्रतिद्वन्दी होती हैं।

इ : अधिक स्वतन्त्र दलों के स्तर पर (उदाहरणार्थ, राष्ट्र, साम्राज्य और अन्य स्वतन्त्र राज्य), जहाँ ऐसे दलों का अन्य ऐसे दलों से पारस्परिक सम्बन्ध है

१. आवश्यक ज्ञान

(१) ऐसे दलों की वृद्धि और उनके लक्षण, और वे उद्देश्य जिनके लिए उनकी वर्तमान में स्थापना हुई है,

(२) वर्तमान सामाजिक व आर्थिक जीवन का विकास-क्रम और फलस्वरूप ऐसे दलों में पारस्परिक निर्भरता,

(३) संस्था-सम्बन्धी बड़े ढाँचे में लाने के कार्य में मनुष्य की असमर्थता के कारण दलों के आपसी-समायोजन में कठिनाइयाँ,

(४) यू० एन०, यूनेस्को इत्यादि जैसी संस्थाएँ बनाने के वर्तमान प्रयत्न जो भिन्न स्वतन्त्र दलों के विरोधी अधिकारों का समायोजन और और समन्वय करने का कार्य करती हैं,

(५) दल-समायोजन के लिए नई संस्थाएँ बनाने के मनुष्य द्वारा प्रयत्न और उनके विकास की ऐतिहासिक समझ।

२. विकास-योग्य वृत्तियाँ

(१) मानव जीवन को भरपूर बनाने के लिए भिन्न सांस्कृतिक व राष्ट्रीय दलों के योगदान को स्वीकार करना,

(२) भिन्न संस्कृतियों के आरम्भ की सहानुभूतिपूर्ण स्वीकृति और उसके महत्व का अध्ययन। यह आवश्यक नहीं है कि यह महत्व किसी भी ऐतिहासिक-काल में इन दलों के आकार अथवा प्रभाव के अनुसार कम अथवा अधिक हो,

(३) पारस्परिक व शान्तिपूर्ण समझौतों द्वारा स्वार्थों और आदर्शों के तनाव व संघर्ष को मिटाने की तत्परता।

३. ऐसी अवस्थाएँ जिनमें सामाजिक समझ की प्राप्ति कठिन है, सामान्य सिद्धान्त को लागू करना

अध्यापक की शिक्षा में सामाजिक समझ के कार्य को समझने के लिए सामाजिक

समझ की वर्तमान समस्याओं का अध्ययन भी होना चाहिए। ऐसी समस्याओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से हो सकता है :

अ : मुख्यतया व्यक्ति के स्तर पर रहनेवाली समस्याएँ

व्यक्ति-विकास और भिन्न व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार का सम्पूर्ण मनोविज्ञान यहाँ संयुक्त है, दलों के तनाव की समस्याओं के लिए यद्यपि यह बुनियादी महत्ता का प्रश्न है, ध्यान से देखा जाए तो यह 'शिविर' के दल १ के अन्तर्गत आता है।

आ : अवलम्बी दलों के स्तर पर रहनेवाली समस्याएँ

(१) बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में परिवार व अन्य दलों की (जैसे स्कूलों, धार्मिक दलों, राजनीतिक पार्टियों की) परस्पर विरोधी माँगें,

(२) भिन्न सामाजिक व आर्थिक वर्गों के परस्पर विरोधी मूल्य, आदर्श, आचरण और क्रियाएँ चाहे वे मजदूर-संघ, व्यावसायिक संघ और राजनीतिक पार्टी जैसे व्यवस्थित दलों के दायरे में हों, और चाहे किसी समुदाय के सामाजिक जीवन के कम व्यवस्थित रूपों में,

(३) समुदाय के अन्दर भिन्न धर्मों और उनकी दल-संस्थाओं की परस्पर विरोधी माँगें,

(४) जातीय अल्पसंख्यकों के अस्तित्व, देहात और शहर की भिन्न दिलचस्पियों और अवसरों, बेकारी, अथवा पुराने या नए, शहरी या अन्तर्राष्ट्रीय संकटों से उत्पन्न निष्ठाओं के संघर्ष—समुदाय अथवा राष्ट्र में इस सब विरोधी तत्वों का अस्तित्व,

(५) राष्ट्रों और अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक व राजनीतिक संघों में अपने सदस्यों की निष्ठाओं पर परस्पर विरोधी माँगें,

(६) केवल रूढ़ियों पर आधारित स्त्री-पुरुष के विशेष अधिकारों, सामान्य अधिकारों, उत्तरदायित्वों और अवसरों में भेद,

(७) किसी समुदाय में विशेष अधिकारों से वंचित जातीय, सांस्कृतिक, अथवा सामाजिक दलों का होना, जिन्हें शिक्षा-सम्बन्धी, व्यवसाय-सम्बन्धी, सामाजिक और राजनीतिक बराबरी प्राप्त नहीं है,

(८) आर्थिक व राजनीतिक संकट-कालों का भिन्न दलों, वर्गों और राष्ट्र पर प्रभाव,

(९) सूचना प्रसार में देर करने का प्रभाव और सामान्य नागरिक को प्राप्त सूचना के निकासों में पक्षपात होने के प्रभाव,

(१०) सामाजिक समझ की समस्या के प्रति वर्तमान शिक्षा-सम्बन्धी दृष्टिकोण का पर्याप्त न होना। (यूनेस्को के अस्तित्व और उद्देश्यों में यह निहित है।)

इ : समस्याएँ जो प्रधानतया अधिक बड़े और स्वतन्त्र दलों के स्तर पर रहती हैं

ये समस्याएँ दल ३ के लिए हैं मगर दल २ भी इनकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। इनमें वही प्रश्न हैं जो पीछे आ चुके हैं, मगर उनके साथ ही कुछ नए भी हैं :

(१) राष्ट्रों के बीच आर्थिक संघर्ष या होड़,

(२) आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए क्षेत्र,

(३) परस्पर विरोधी जीवन-आदर्श और राजनीतिक दर्शन,

(४) अन्य राष्ट्रों और लोगों से शासित या उन पर अवलम्बित होने के कारण उत्पन्न हुई वृत्तियाँ व संघर्ष।

अधिक अच्छी अंतर्राष्ट्रीय समझ में योगदान देने के लिए अध्यापकों को तैयार करना

दल ३

श्री हामेद अम्मर (मिस्र)
श्री यवेस ब्रंसविक (फ्रांस)
श्री रूबन एच० इलियासन (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
श्री डर्क फ़ाकेमा (निदरलैंड्स)
श्रीमती प्रेमा जौहरी (भारत)
श्री पाटर एम० जूल (नार्वे)
श्रीमती हलीना लेवीका (पोलैंड)
श्री ए० आर० लार्ड (केनाडा)
श्री जी० डब्ल्यू० पेजेट (इंगलैंड)
श्री ए० पीटर्स (बेल्जियम)
श्री एल्मर टी० पीटर्सन (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
श्री जेरार्ड पुल्ग (स्वट्ज़रलैंड)
श्री लियोनार्ड जे० प्रियोर (आस्ट्रेलिया)
श्री एमिल शास (लक्सेमवर्ग)
श्री गेम्मा टेस्टी (इटली)
श्री जैकस वियार्ड (फ्रांस)
श्री ई० आई० एफ० विलियम्स (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)
श्री ए० जे० वीलर (फ्रांस)
(दल के सभापति)

१. भावी अध्यापकों की शिक्षा

यह मान लिया गया है कि ट्रेनिंग संस्था में प्रवेश करने से पहले भावी अध्यापक किसी माध्यमिक स्कूल में उपस्थित रहे हैं और उनमें अन्य देशों के लोगों के

जीवन के तरीकों की जानकारी और समझ पैदा हो गई है। यह भी मान लिया गया है कि ट्रेनिंग संस्था उन्हें विस्तृत सामान्य शिक्षा देगी।

ट्रेनिंग संस्था का उत्तरदायित्व गंभीर है क्योंकि पढ़ानेवाले अध्यापकों की अपेक्षा शिक्षा लेनेवाले अध्यापकों के भावों और वृत्तियों पर बहुत आसानी से प्रभाव पड़ते हैं।

दल की सिफ़ारिश है कि निम्नलिखित उपायों में से जितने भी संभव हों, ट्रेनिंग संस्थाओं में इस्तेमाल किए जाएं। स्वाभाविक है कि उनकी स्वीकृति विशेष स्थानीय दशाओं पर निर्भर करेगी। प्रत्येक संस्था इन सभी सुझावों का अनुकरण नहीं कर सकती, मगर प्रत्येक सुझाव किसी न किसी देश में व्यावहारिक रूप में सफल रहा है।

१. कोर्स के आरंभिक दिनों में ही कार्यकर्त्ताओं को प्रयत्न करना चाहिए कि उन्हें यह मालूम हो जाए कि उनके विद्यार्थियों का अन्य जातियों और सभ्यताओं के प्रति क्या रुख है। इससे वे निर्धारित कर सकेंगे कि कौन से विद्यार्थी को अंतर्राष्ट्रीय समझ के विषय में कितनी ट्रेनिंग की जरूरत है। यूनेस्को को चाहिए कि इस किस्म की जाँच के विकास का उपयुक्त उपाय ढूँढ़ निकाले, ताकि सभी देश इससे लाभ उठा सकें।

२. समझ बढ़ाने का सबसे अच्छा उपाय व्यक्तिगत अनुभव माना जाता है। सो यह सुझाया जाता है कि:

(क) अनुपस्थिति की छुट्टी, आर्थिक सहायता, और अन्य उपायों द्वारा कार्यकर्ताओं को अन्य देशों का पर्यटन और अध्ययन करने को उत्साहित किया जाए। कार्यकर्त्ताओं की अदला-बदली भी जितनी बार हो सके की जानी चाहिए,

(ख) इसी प्रकार की सहायता विद्यार्थियों को भी देनी चाहिए, जहाँ संभव हो स्कूलों का पारस्परिक निरीक्षण और विद्यार्थियों की अदला-बदली भी होनी चाहिए। अन्य जातियों और धर्मों के स्थानीय लोगों के साथ मित्रता बढ़ानी चाहिए।

३. शिक्षा के एक ऐसे कार्यक्रम का प्रबंध होना चाहिए जिससे अंतर्राष्ट्रीय समझ को प्रोत्साहन प्राप्त हो। यह शिक्षा ऐसे व्यक्तियों द्वारा दी जानी चाहिए जो अंतर्राष्ट्रीय समझ बढ़ाने के विषय में उत्साह रखते हैं। कई बार यह आवश्यकता पड़ेगी कि अन्य कर्मचारी उन कार्यकर्त्ताओं का उत्साह बढ़ाते रहें—और आशा की जाती है कि इस उत्तरदायित्व को संस्था के अधिष्ठाता संभालेंगे।

४. निम्नलिखित पाठ्यक्रमों द्वारा अंतर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ावा दिया जा सकता है। ये पाठ्यक्रम अधिकतर सभी अध्यापक-ट्रेनिंग संस्थाओं में

पाए जाते हैं : (क) मनोविज्ञान, (ख) शिक्षा का इतिहास, तुलनात्मक शिक्षा, (ग) सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल, समाज-शास्त्र, सौंदर्य-विज्ञान, इत्यादि)। यहाँ दृष्टिकोण का महत्व है। यदि कुछ पाठों का सही रीति से विकास किया जाए तो बाद के अध्ययन में भी विद्यार्थी इसी रीति का अनुकरण कर सकते हैं, (घ) विज्ञान। दूसरे राष्ट्रों के व्यक्तियों के विज्ञान में योगदान की ओर संकेत किया जा सकता है जिसमें मालूम हो कि विज्ञान अंतर्राष्ट्रीय है, (ङ) कला व संगीत। यहाँ भी अन्य जातियों, राष्ट्रों अथवा व्यक्तियों की देन पर जोर दिया जाना चाहिए।

५. जहाँ भी संभव हो सुनने और देखने के साधनों का पूरा उपयोग करना चाहिए। यूनेस्को से कहा गया कि : (क) वह इस प्रश्न का अध्ययन और तत्परता से करे, (ख) १९४७ की यूनेस्को की सामान्य कांफ्रेन्स के प्रस्ताव को वह कार्यान्वित करे। इस प्रस्ताव में यह कहा गया था कि सदस्य राष्ट्र शिक्षा की फिल्मों, और विशेषकर रेडियो के ट्रासमीटरों, की स्वतंत्र अदला-बदली करें और इसमें कोई लाभ न लिया जाए।

६. पाठ्यक्रम के बाहर की सक्रियताएँ। विद्यार्थी-सभाएँ और वर्तमान घटना क्लब यदि अच्छी तरह चलाएँ जाएँ, तो बहुत लाभकारी हो सकते हैं। यदि भाषणकर्त्ताओं को सावधानी से चुना जाए, तो जनता के लिए खुले भाषण भी सहायक होते हैं।

विद्यार्थियों को लोकराज की जीवन-रीति के विस्तृत अनुभव की आवश्यकता है, और यह अनुभव वे इस प्रकार जीवन व्यतीत कर के ही कर सकते हैं—इसके विषय में केवल पढ़कर या अध्ययन करके नहीं। अपनी क्लबों और सभाओं का प्रबंध करने के लिए उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए, और जहां संभव हो वहाँ उन्हें समुदाय के जीवन में सक्रिय भाग लेने पर भी उकसाना चाहिए। उनकी अपनी सभाओं का नियंत्रण कार्यकर्त्ताओं के निर्णय पर ही नहीं होना चाहिए। बाहरी नियंत्रण के कारण वे हमेशा सही रास्ते पर होते हैं, इससे यह बेहतर है कि विद्यार्थी भूलें करें। सलाह के लिए बेशक कार्यकर्त्ता-सलाहकारों की सहायता विद्यार्थी ले सकते हैं।

७. विदेशी विद्यार्थियों को अपने ही दलों में रहने से रोकना चाहिए। उन्हें स्वतंत्रता देनी चाहिए कि वे स्थानीय जनता में घुल-मिल जाएं।

८. चौथी सिफ़ारिश में सुझाया गया, एक विशेष पाठ्यक्रम रखना चाहिए जो यू० एन० और विशेष काम के लिए स्थापित अन्य संस्थाओं के विषय में हो। इस पाठ्यक्रम के लिए कम से कम दो पुस्तकों की आवश्यकता होगी : विद्यार्थियों के लिए एक सरल पाठ्य पुस्तक जिसमें चित्र, आकृतियाँ और

ग्राफ़ होंगे, दूसरी सिखलानेवालों के लिए अधिक विस्तृत रीति से लिखी हुई सहायक-पुस्तक।

प्रारंभिक अभिरुचि उत्पन्न करने की आवश्यकता को देखते हुए, यूनेस्को से यह अपील की गई कि वह ऐसी पुस्तकों की प्रतियाँ प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की प्रत्येक अध्यापक-ट्रेनिंग-संस्था को भेजे। इसके अलावा यूनेस्को ऐसी संस्थाओं की एक सूची रखे, जिसे भविष्य में प्रकाशित होनेवाली सामग्री छपते ही भेजी जा सके।

२. काम-की-अवधि में अध्यापकों की ट्रेनिंग

भिन्न देशों से 'शिविर' में एकत्रित होनेवाले अध्यापकों ने अपने देशों की दशा का जो चित्र उपस्थित किया, उससे पता चला कि अधिकांश देशों में अध्यापक की ट्रेनिंग को सुधारने के प्रयत्न हो रहे हैं। मगर साथ ही यह भी पता चला कि नई पीढ़ी के बालकों को नैतिक, नागरिक, सौंदर्य-शास्त्र संबंधी अथवा सामाजिक शिक्षा बहुत कम मिल रही है जो वर्तमान काल में केवल स्कूल ही दे सकते हैं। यदि अध्यापक ऐसी शिक्षा प्रदान करने के लिए विशेषत: तैयार नहीं किए जाते, तो स्कूल सुचारु ढंग से अंतर्राष्ट्रीय समझ बढ़ाने में योगदान नहीं दे सकते। जो काम सभी वर्तमान अध्यापकों को करना है, वह अध्यापकों की नई पीढ़ी की प्रतीक्षा करे—यह कहना निरर्थक है। युद्ध के कारण और अध्यापकों के लिए अधिक माँग के कारण, कई देशों को शिक्षा का कार्य भार ऐसे व्यक्तियों को सौंपना पड़ा है जो नियमित ट्रेनिंग प्राप्त नहीं हैं। स्पष्ट है कि वर्तमान अध्यापन के सुधार की योजनाओं की आवश्यकता बहुत अधिक है।

आवश्यकता केवल शास्त्रीय दृष्टि से सुधार की ही नहीं है, बल्कि ऐसे सुधारों की भी है जिनके द्वारा विद्यार्थियों को नया सामाजिक दृष्टिकोण प्राप्त हो।

व्याख्यानों में, बहसों में, फ़िल्म दिखाने के दौरान में—शिविर के अवधि-काल में बार-बार उल्लेख हुआ, अंतर्राष्ट्रीय समझ की प्राप्ति में पहली रुकावट का। यह रुकावट थी भिन्न दलों के बीच खिंचाव। शिक्षा संबंधी मनोविज्ञान में जो उन्नति हुई है, उससे हम कह सकते हैं कि निम्नलिखित वृत्तियों से अंतर्राष्ट्रीय समझ की शिक्षा में बाधा पड़ेगी। इन वृत्तियों में अधिकांश ऐसी हैं जिनसे बहुत अनुभवी अध्यापक भी नहीं बच सकते।

(अ) विशेषज्ञ का दृष्टिकोण, जो एकांगी वृत्ति है और जो बालकों की शास्त्रीय उन्नति और संस्कृति की महत्ता पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देती है। (यह वृत्ति अधिकतर माध्यमिक स्कूलों में पाई जाती है।)

(आ) अध्यापकों की भिन्न कोटियों के बीच असहयोग की वृत्ति और व्यवस्थापकों व जाँच-अधिकारियों के बीच असंतोषजनक संबंध।

(इ) व्यर्थता व कभी कभी डर की भावनाएँ जो अध्यापकों में इसलिए पैदा होती हैं क्योंकि वे अपने राजनीतिक विचारों को दबाते हैं—ताकि उन पर व्यवसाय की दृष्टि से कोई आँच न आए।

(ई) कम वेतनों से पैदा हुई द्वेष की वृत्ति।

(उ) बौद्धिक अकड़ की वृत्ति और अपनी संस्कृति के सर्वोत्तम होने पर विश्वास की बातें बहुत से ऐसे शिक्षकों में पाई जाती हैं जिनकी ट्रेनिंग संकुचित और अपर्याप्त होती है।

१९४७ के यूनेस्को 'शिविर' की रिपोर्ट में व्यक्त किए गए विचारों का पुनर्समर्थन करते हुए हम यह कहना चाहते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय समझ को बढ़ाने की ओर पहला कदम यह होना चाहिए कि काम करनेवाले अध्यापकों को सहायता दी जाए ताकि न केवल उनका ज्ञान-वर्धन हो बल्कि वे संसार के अच्छे नागरिक भी बन सकें।

भिन्न देशों के बीच अध्यापकों की अदला-बदली भी बहुत महत्व रखती है। ऐसी अदला-बदली प्रायः माध्यमिक स्कूलों के विदेशी भाषाओं के अध्यापकों तक ही सीमित रहती है। सभी विषयों के, विशेषतः तकनीकी विषयों के अध्यापकों को भी इस अदला-बदली में शामिल करना चाहिए।

अतिथि-सत्कार की प्रथा को, जहाँ इसे भुला दिया गया है, पुनर्जीवित करने के लिए अध्यापकों को खुद कार्यारम्भ करना चाहिए।

भिन्न देशों में प्रादेशिक स्तर पर आयोजित सीमित-काल के 'शिविर' की भी सिफ़ारिश की गई। इन शिविरों में देश में रहनेवाले अथवा विदेश से आमन्त्रित विदेशी अध्यापकों को भी बुलाना चाहिए। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समझ के विकास में अध्यापकों को सहायता दी जा सकेगी। सदा भिन्न शासन क्रमों और शिक्षा स्तरों के अध्यापकों को इन 'शिविरों' में एकत्रित करना चाहिए और उनके लिए विशेष सभाओं का प्रबन्ध भी होना चाहिए।

३. अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए स्कूलों में शिक्षा

राष्ट्रीय समझ में योगदान देनेवाले काम में लगे और ट्रेनिंग लेते हुए अध्यापकों की तैयारी के विषय में बहस करने के अलावा, दल ३ ने संक्षेप में उन उपायों पर भी विचार किया जिनके द्वारा इस विषय को स्कूलों में पढ़ाना आरम्भ किया जा सकता है। उल्लेख के लिए यूनेस्को के प्रकाशन नम्बर १८५, 'टीचिंग एबाउट दि यूनाइटेड नेशंस—सम सजेशंस एण्ड

रिकमेण्डेशन्स'* का प्रयोग किया गया और पाया गया कि निजी अधिकांश निर्णय दल इसपर आधारित कर सकता है।

इस पर सब सहमत हुए कि आज शिक्षा का मुख्य उद्देश्य सारे संसार के स्कूलों के विद्यार्थियों को ऐसे तैयार करना है कि वे एक ऐसे संसार-समाज के समझदार सदस्य बन सकें जो यद्यपि स्वभाव व परस्परा से विविध हो मगर संसार-शान्ति और प्रत्येक-मानव-के-लिए सम्पूर्ण-जीवन के सिद्धान्तों की ओर अग्रसर होने में एक हो। स्कूल का पहला उद्देश्य है अच्छी सामान्य शिक्षा देना। मगर इस शिक्षा से केवल सूचना मिले और इस सूचना को प्राप्त करने का उपाय विद्यार्थी सीख जाय, यही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा से विद्यार्थी के मस्तिष्क को ट्रेनिंग मिलनी चाहिए और जहाँ तक सम्भव हो, उसमें विशेष अमूल्य मानसिक योग्यताओं का विकास होना चाहिए। इन योग्यताओं की सही परिभाषा 'हारवार्ड रिपोर्ट आन जनरल एजूकेशन' में इस प्रकार दी गई है :

(अ) प्रभावकारी तरीके से सोचना, जिसका अर्थ यह हुआ कि विद्यार्थी को तार्किकता से सोचना, मत और ज्ञान में अन्तर करना और जाने व अनजाने तथ्यों में भेद करना आना चाहिए।

(आ) विचार को स्पष्टता और प्रबलता से व्यक्त करना।

(इ) सही निर्णय करना।

(ई) भिन्न मूल्यों में अन्तर करना और उन्हें कार्यों, भावनाओं और विचारों में व्यक्त करना।

दल ने स्वीकार किया कि यदि इस प्रकार की शिक्षा का विस्तृत क्षेत्रों में प्रयोग किया जाए, तो इसमें सन्देह नहीं कि इससे अन्तर्राष्ट्रीय समझ बढ़ेगी। मगर सदस्यों ने यह अनुभव किया कि इस समय कुछ और स्पष्ट शिक्षा की आवश्यकता है। पहली बात तो यह कि प्रत्येक विद्यार्थी को संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशंस) और उसकी विशेषज्ञ एजेंसियों के ढाँचों और उद्देश्यों के विषय में कुछ जानकारी दी जाए। यह जानकारी बालकों की आयु, योग्यता और दिलचस्पियों को दृष्टि में रखकर घटाई-बढ़ाई जा सकती है।

सिफारिश की गई कि छोटी उम्र के विद्यार्थियों को पढ़ाते समय चक्करदार अथवा आकस्मिक अध्ययन के पाठों के मध्य में संयुक्त राष्ट्र (यूनाइटेड नेशंस) और उसकी विशेषज्ञ एजेंसियों के कार्यों को उजागर करने के लिए कहानियों, गीतों, नाटकों, चित्रों और सम्भव हो तो चलचित्रों का भी समावेश करना चाहिए।

* इस पुस्तिका का संशोधन हो चुका है और अब उसकी प्रतियां इस नाम से मिल सकती हैं : 'सम सजेशंस आन टीचिंग एबाउट दि यूनाइटेड नेशंस एंड इट्स स्पेशलाइज्ड एजेन्सीज। यूनेस्को प्रकाशन नम्बर २४२।

इससे नागरिकता के उन गुणों के विकास में मदद मिलेगी, जिनकी नींव पर अन्तर्राष्ट्रीय सरकार खड़ी होगी। जब बालक किशोरावस्था को प्राप्त हों और यूनाइटेड नेशंस के कार्य में निहित विचारों को समझने योग्य हों, तो स्वाभाविकतया ही अधिक सीधे उपायों का प्रयोग किया जा सकता है।

जहाँ तक दूसरे देशों और लोगों के विषय में शिक्षा देने का प्रश्न है, दल ने कहा कि सीधी शिक्षा प्रायः भिन्नता पर ज़ोर देती है, उनका स्पष्टीकरण नहीं करती। शायद इसका कारण दिलचस्पी बनाए रखने के लिए सरलीकरण की आवश्यकता और ध्यान के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति है—जिसके कारण असाधारण और अपरिचित तथ्यों की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है। निम्न कोटि की अथवा पुरानी पाठ्य-पुस्तकों के प्रयोग से भी वक्रता उत्पन्न होती है।

बालकों को प्रत्येक सम्भव अवसर देना चाहिए जिससे वे दूसरे देशों के बच्चों से सीधे या किसी अन्य ज़रिये से मित्रता कर सकें, चाहे दूसरे देशों के बच्चे विदेशों में रहते हों या उसी देश में रहते हों। इससे उनके बीच दिलचस्पी व सहानुभूति उत्पन्न होगी। अन्य देशों की कलाओं, संगीत और साहित्य का अध्ययन दिलचस्पी उभारता है और अन्तर्राष्ट्रीय समझ के लिए अच्छी पृष्ठभूमि तैयार करता है।

सिफारिश की गई कि अध्यापकों को चाहिए कि वे संसार की चेतना जगाने के लिए कक्षा के बाहर की सक्रियाताओं को बढ़ावा दें। जहाँ भी सम्भव हो, वे समुदाय के अन्य व्यक्तियों व संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

परिशिष्ट : शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तक-सूचियों के सुधार के लिए प्रस्तुत

'शिविर' के अवधि-काल में, दल २ की सह-कमेटी ने शिक्षा-सम्बन्धी प्रकाशनों की सूचियों और उनकी त्रुटियों के प्रश्न पर बहस की, और उनके सुधार के लिए भी कुछ प्रस्ताव रखे।

इंगलैंड, फ्रांस, लक्सेमबर्ग, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और नार्वे के अध्यापकों को ट्रेनिंग देनेवाले विद्यालयों में सबसे अधिक प्रयोग होनेवाली कुछ पाठ्य-पुस्तकों का निरीक्षण किया गया, और सह-कमेटी ने निर्णय किया कि :

(अ) शिक्षा-सम्बन्धी प्रकाशनों की सूचियाँ प्रायः उस देश में प्रकाशित अथवा उस देश की भाषा में लिखी गई पुस्तकों तक ही सीमित रहती हैं।

(आ) जहाँ नए संस्करण प्रकाशित हो चुके हों, वहाँ भी प्रायः पुस्तक-सूचियाँ पुराने संस्करणों का उल्लेख करती हैं। १६३६ से पहले छपी सूचियों में यह कमी अक्सर पाई जाती है और लड़ाई के कारणों से अधिक बढ़ गई है। उदाहरणार्थ, एक विशेष रूप से पूरी सूचीवाली एक पाठ्य-पुस्तक में १५४ पुस्तकों के नाम दिए गए—जिनमें से १११ उस देश के प्रकाशन और २६ पड़ोसी देश के

प्रकाशन थे। बाकी संसार भर में प्रसिद्धि प्राप्त पुस्तकों में से केवल १८ ऐसी शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों के नाम दिए गए जो कहीं और छपी थीं। यह पाठ्य-पुस्तक यद्यपि १९४७ में प्रकाशित हुई थी, इस सूची की १५४ में से केवल ९ पुस्तकें १९३८ के बाद की छपी हुई थीं।

दल ने महसूस किया कि गलत अथवा अपूर्ण पुस्तक-सूचियों से अध्यापकों की ट्रेनिंग में भारी कमी रह जाती है और अन्तर्राष्ट्रीय समझ के विकास पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए निम्नलिखित सुझाव उपस्थित किए गए :

(अ) कि यूनेस्को की राष्ट्रीय कमीशनों और योग्य जनता व व्यक्तिगत संस्थाओं को लिखकर यूनेस्को सूचना इकट्ठी करे। इसके आधार पर शिक्षा और शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर मुख्य प्रकाशनों, पाठ्य-पुस्तकों और पाक्षिक पत्रों की एक विश्लेषणात्मक सूची तैयार की जाए। सूची को समयानुकूल सही रखने के लिए एक वार्षिक परिशिष्ट प्रकाशित किया जाना चाहिए।

(आ) कि राष्ट्रीय कमीशन अथवा अन्य योग्य राष्ट्रीय संस्थाएँ जिन उत्तम पुस्तकों की सिफारिश करें, उनके जितनी भाषाओं में भी सम्भव हो उतने अनुवादों के लिए, यूनेस्को प्रोत्साहन दे।

(इ) कि जो प्रकाशन अब अप्राप्य हैं मगर माने हुए गुणों के हैं, उनको पुनः छापने और बेचने के लिए यूनेस्को अपनी सारी शक्ति लगा दे।

(ई) कि विचारों के स्वतन्त्र बहाव के रास्ते में जो आर्थिक रुकावटें हैं, उन्हें सुलझाने का यूनेस्को पुनः प्रयत्न करे। इस विषय में दल को 'बुक-कूपन'* योजना में दिलचस्पी है जिसे वह फैलता देखना चाहेगा। कापीराइट की अदला-बदली** की भी यह दल सिफ़ारिश करना चाहता है।

* दि यूनेस्को बुक कूपन, यूनेस्को प्रकाशन नम्बर २३६।

** कापीराइट बुलेटिन, यूनेस्को का त्रैमासिक प्रकाशन।

परिशिष्ट

कर्मचारी और भागीदारों की सूची

जिन्होंने
अध्यापकों की शिक्षा और ट्रेनिंग पर हुए 'शिविर' में
भाग लिया

कर्मचारी

डायरक्टर :

बिजेलो, कार्ल डब्ल्यू० (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका), शिक्षा के प्राध्यापक, टीचर्स कालेज, कोलम्बिया विश्वविद्यालय।

यूनेस्को के शिविरों की देखरेख करनेवाले सचिवालय का सदस्य :

गीटोन, जीन विलियम (फ्रांस), शिक्षा विभाग, यूनेस्को।

सलाहकार :

लारिया, जूलियो (इकुआडोर), डायरेक्टर, 'नुएवा ईरा'।

अध्ययन-दलों के सभापति :

बांड, होरेस एम० (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका), लिंकन विश्वविद्यालय के सभापति।

मैक्री, क्रिस्टोफ़र आर० (आस्ट्रेलिया), शिक्षा के प्राध्यापक, सिडनी विश्वविद्यालय।

वीलर, आल्फ्रेड जे० (फ्रांस), हेडमास्टर, मोन्टगेरोन का प्रयोगात्मक लाइसी।

कायक्रम सहायक :

डि मायसचाक, वरजिल पी० सी० (बेल्जियम), प्रिंसिपल, टीचर ट्रेनिंग स्टेट कालेज।

प्रबन्ध सहायक :

ग्रालकाक, जे० जी० एम० (इंगलैंड), स्कूल व परीक्षा ग्रफसर, ब्रिटिश काउन्सिल ।

सहायक :

हिल, ग्राल्फ्रेड टी० (संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका), ग्रेजुएट विद्यार्थी, टीचर्स कालेज, कोलम्बिया विश्वविद्यालय ।

लाइब्रेरियन :

उल्स्टीन, गेब्रीयेल, कुमारी (इंगलैंड), न्यून्हेम कालेज, केम्ब्रिज ।

भागीदार

ग्रम्मर, हामेद (मिस्र), पोस्ट-ग्रेजुएट विद्यार्थी, लंदन विश्वविद्यालय ।

बिली, जैकुस एस० (फ्रांस), साहित्य-ग्रध्यापक, टेकनिकल स्कूल ।

वाचवे, क्रिश्चियन (इंगलैंड, गोल्ड कोस्ट), शिक्षा विभाग ।

बूले, हेलेन, श्रीमती (फ्रांस), प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज ।

ब्रंसविक, यवेस (फ्रांस), दर्शन के प्राध्यापक, मिनिस्ट्री ग्राफ़ फारेन एफेयर्स से संलग्न, यूनेस्को डेलिगेशन के सदस्य ।

केम्बल, हेलन एफ०, श्रीमती (इंगलैंड), शिक्षा में सीनियर लेक्चरर ।

चैम्पियन, ग्रालबर्ट (फ्रांस), प्राथमिक स्कूल शिक्षा के इंस्पेक्टर, मिनिस्ट्री ग्राफ़ कोलोनियल एफ़ेयर्स के विभाग के प्रधान ।

डोब्रोवोल्स्का, मिग्रोक्रिस्डावा, श्रीमती (पोलैंड), लेक्चरर, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, काटोविज़ ।

एलियासन, ट्यूवन, एच० (संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका), शिक्षा के प्राध्यापक ग्रौर शिक्षा विभाग के प्रधान ।

फ़ाक्केमा, डर्क (निदरलेंड्स), टीचर्स ट्रेनिंग इंस्टीटयूशन के प्रिंसिपल ।

ग्यालमौस, जानास (हंगरी), शिक्षा मंत्रालय में मंत्रिमंडल के सलाहकार ।

हानकैम्प, गरट्रूड, कुमारी (संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका), प्रबन्ध-मंत्री, एसोसिएशन फ़ार सुपरविज़न एण्ड करीकुलम डिवेलपमेंट ।

हेकिमगिल, ग्रमीन (तुर्की), इतिहास-ग्रध्यापक ।

हेन्शिलवुड, नोरा, कुमारी (दक्षिण ग्रफ्रीका संघ), प्रिंसिपल, ट्रेनिंग कालेज ।

हर्नडन, टामस सी० (संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका), रसायन के प्राध्यापक ग्रौर विज्ञान विभाग के सभापति, ईस्टर्न केंचुकी स्टेट कालेज ।

जेम्सन, क्रिस्टोफ़र (इंगलैंड), डायरेक्टर, ट्रेनिंग कालेज फ़ार टेकनिकल टीचर्स।

जौहरी, प्रेमा, श्रीमती (भारत), एसिस्टेंट एजूकेशनल एडवाइज़र शिक्षा मंत्रालय।

जोन्स, मेगन, कुमारी (इंगलैंड), लेक्चरर, ट्रेनिंग कालेज।

जूल, पेट्टर एम० (नार्वे), लेक्चरर इन एजूकेशन, ग्रास्लो स्टेट नार्मल स्कूल।

किनानी, ए० ख० (सीरिया), इंस्पेक्टर ग्राफ़ स्टेट स्कूल्स, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के लेक्चरर।

लाल, सोहन (भारत), डायरेक्टर, ब्यूरो ग्राफ़ साइकालोजी।

लेवीका, हलीना, श्रीमती (पोलैंड), टैक्स्टबुक कमेटी की सदस्या, शिक्षा मंत्रालय।

ल्यूइस, ए० विलफ़ (केनाडा), डीन, प्राविन्शल नार्मल स्कूल।

लार्ड, एलेक्जेण्डर ग्रार० (केनाडा), प्रिंसिपल, प्राविन्शल नार्मल स्कूल।

ल्विन, यू० बा (बर्मा), प्रिंसिपल, को-एजूकेशनल स्कूल।

माइक्सबोल, बिर्जर (नार्वे), नार्मल स्कूल के ग्रध्यापक।

ग्रोमीरा, जान (दक्षिणी ग्रफ्रीका संघ), जोहांसबर्ग टीचर्स कालेज के लेक्चरर।

ग्रोसाय, लामिया, श्रीमती (तुर्की), ग्रंकारा।

पेजेट, जी० डब्ल्यू० (इंगलैंड), शिक्षा मंत्रालय।

पार्किन, जी० डब्ल्यू० (न्यूज़ीलैंड), रिसर्च ग्रफ़सर, न्यूज़ीलैंड काउन्सिल फ़ार एजूकेशनल रिसर्च।

पावली, लारेन्ट (स्विट्ज़रलैंड), प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज एण्ड ग्रामर स्कूल।

पीटर्स, ग्रालबर्ट (बेल्जियम), माध्यमिक स्कूल शिक्षा के इंस्पेक्टर।

पीटर्सन, एल्मर टी० (संयुक्त राष्ट्र ग्रमेरिका), प्रवन्धक डीन, डिवीज़न ग्राफ़ रिसर्च एण्ड टीचिंग, स्टेट यूनिवर्सिटी ग्राफ़ ग्रायोवा।

फुल्ग, जेरार्ड (स्विट्ज़रलैंड), प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग स्टेट कालेज।

प्रियोर, लियोनार्ड जे० (ग्रास्ट्रेलिया), लेक्चरर, टीचर्स कालेज।

शास, एमिले (लक्सेमबर्ग), प्रिंसिपल, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज।

स्किन्नर, एण्ड्र्यू एफ० (इंगलैंड), डायरेक्टर ग्राफ़ स्टडीज़, डण्डी ट्रेनिंग कालेज, ग्रौर शिक्षा के प्राध्यापक, सेंट एण्ड्र्यूज़ यूनिवर्सिटी।

सोलारू, टानीमो (इंगलैंड, नाइगेरिया), ग्रध्यापक।

सोस्ना, फ्रांटीसेक (चेकोस्लोवाकिया), इंस्टीटयूट ग्राफ़ एजूकेशनल रिसर्च।

स्टीव्स, विलियम ए० (केनाडा), गणित के सहायक प्राध्यापक, स्कूल फ़ार टीचर्स, मैकगिल यूनिवर्सिटी।